SAUDIAKARBIA
for detailed job description visit online www.omba...

वर्ष ६, अंक ९

श्रीकृष्णाय नमः

जन्माङ्क

आषाढ १९९१

वार्षिक चन्दा ७)

सम्पादक—
स० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		२४५
२.	पुराण गाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी		२४६
३.	जय गिरधारी (कविता) [रचयिता रामनारायण शुक्ल साहित्य-रत्न		२५०
४	तत्त्वोपदेश [ले० श्री महात्मा राम जी आश्रम		२५१
५.	संस्कृत-साहित्य में श्रीकृष्ण [ले० पं० श्री गंगाविष्णु विद्याभूषण 'विष्णु'		२५८
६.	चेतावनी (कविता) [रचयिता काव्यरत्न पं० भगवत्प्रसाद शुक्ल "सनातन"] ...		२६२
७.	वासना [ले० श्री यमुना प्रसाद जी नरसिंहपुर		२६३
८.	भगवत् स्मरण से लाभ [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम		२६८
९.	ॐ नमः (कविता) [रचयित्री श्रीमती ब्रज कुमारी 'प्रभाकर' (आश्रम)		२७०
१०.	साधन-साहाय [ले० श्रीकृष्ण पन्त नैनीताल		२७१
११.	योग-साधन [ले श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		२७४
१२.	भजन [संग्रहकर्ता हरीराम ब्रह्मचारी म० म० आश्रम		२७५

—o::□::o::□::o—

प्राप्तिस्वीकार

१. श्री चैतन्य चरितावली (खण्ड ४ व खण्ड ५) लेखक श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, प्रकाशक 'गीताप्रेस' गोरखपुर मूल्य चतुर्थ खण्ड ॥=) पृष्ठ संख्या २२३ व पंचम खण्ड ॥)। इनदोनों ग्रन्थों में महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य के चरित्रों का चित्रण मर्मस्पर्शी एवं सजीव भाषा में किया गया है।

2. Mind: Its mysteries and control Part I By Swami Shivananda ji Saraswati and Published by Gita Press Gorackhpur. This is a small book consisting of nearly 200 qages deals with the nature, aspects and various states and habits of the mind. Those who want to tread the path of God-realzation would do well to purchase a copy. Price 8 annas.

३. श्री तुकाराम चरित्र (अनुवादक श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे) प्रकाशक 'गीता प्रेस' गोरखपुर। मूल्य १=)। इस ग्रन्थ में परम भागवत श्री तुकाराम जी का परम पुनीत चरित्र उनकी अभंगवाणी के आधार पर सुन्दर व सरस भाषा में किया गया है। ग्रन्थ भागवतों के संग्रह करने योग्य है।

(सम्पादक)

Pharmacy | L/Pharma | | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जावगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी हंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुआ जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	११)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

for detailed job description
OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

अघासुर-उद्धार

अघ अजगर बनि ब्रज बस्यौ बैठयौ बदन पसार ।
पैठत तेहि गो-गोपगन जिय गिर-गुहा बिचार ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, श्रावण, ता० १ जुलाई, १९३१ | अंक ९ पूर्ण संख्या १०५

वेदोपदेश

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन्।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

तुम्हारे शब्द सुनकर चिड़ियां भी उड़ती हैं। जिस समय तुम्हारी शिखाएँ तिनके जलाकर चारो दिशाओं में विस्तृत होती हैं, उस समय सारा वन तुम्हारे और तुम्हारे रथके लिये सुगम हो जाता है। अग्नि, तुम्हारे मित्र होने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेडो अद्भुतः।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

इस स्तोता को मित्र और वरुण धारण करें। अन्तरीक्ष चारी मरुतों को क्रोध अत्यधिक होता है। हमें सुखी करो और इन महान् मरुतों का मन प्रसन्न हो। अग्नि, तुम्हारे बन्धु रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

Pharmacy | L/Pharma | | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

पुराण गाथा

प्रह्लाद का उपदेश (चालू)

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

प्रल्हाद-हे मित्रो ! जब मेरे पिता हिरण्यकशिपु मंदराचल पर्वत के ऊपर तप करने के लिये चले गये, तो उनके चले जाने के पीछे देवता दैत्यों से युद्ध करने का परम उद्यम करने लगे। क्योंकि देवताओं ने समझ लिया कि लोकों को तपाने वाला पापी दैत्य तो अपने पाप से ही जैसे मरे हुए सर्प को चेंटियां खाजाती हैं, इसी प्रकार खालिया गया, यानी पापी का पाप, ही खागया। ऐसा समझकर देवताओं सहित इन्द्र ने दानवों के ऊपर चढाईकरी उन्हों ने बहुत से दैत्यों को मार डाला और बहुत को बांध लिया, ऐसा देखकर असुरों के यूथप सर्व दिशाओं में भागने लगे ! न किसी ने स्त्री को साथ लिया, न पुत्रों की ही खबर ली, सबके सब अपने प्राण बचाने की इच्छा से घरों को, पशुओं को और घरों के सामान को छोड़ २ कर शीघ्र ही जहां स्थान मिला, वहां भाग गये ! जब की इच्छा वाले देवता राज महल को लूटने लगे और इन्द्र मेरी माता पटरानी को पकड़ कर लेचला। भय से भयभीत हुई कुररी पक्षी के समान मेरी माता रो रही थी और इन्द्र उसे लिये जा रहा था, इतने में दैवयोग से देवर्षि नारद वहां पर आगये और इन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

नारद-हे सुरपते ! हे महाभाग ! यह परायी स्त्री है अपराध रहित है, इस सती को तुझे लेजाना योग्य नहीं है ! पुण्यात्मा पुरुष पर स्त्री को हाथ से छूते नहीं है, ऐसा करने से पुण्य क्षण होता है और पाप लगता है, तुझ देवताओं के राजा को और धर्म जानने वाले को ऐसा करना उचित नहीं है, तू इस निर्दोष अबला को छोड़ दे ! छोड़दे !

इन्द्र-हे धर्मज्ञ ! मैं इसको पाप दृष्टि से नहीं छूता हूं, इसके गर्भ में देवताओं के द्वेषी दैत्य का अमोघ वीर्य है, जब तक इसके जठर से पुत्र उत्पन्न न हो, तब तक मैं इसे यहां अपने महल में रक्खूंगा पीछे उत्पन्न होने पर पुत्रको मार कर इसको छोड़ दूंगा, क्योंकि अर्थ शास्त्र का वचन है कि शत्रु को निर्मूल ही करदेना चाहिये !

नारद-हे देवेन्द्र ! इसके जठर में अनन्त भगवान् का अनुचर महा भागवत, महाबली और पाप रहित है, इसको तू मार नहीं सका, तेरे हाथ से इसका मृत्यु नहीं हो सका ! सिवाय इसके तुझे इससे कुछ भय भी नहीं है, क्योंकि मधुसूदन भगवान् के भक्त समदर्शी होते हैं, उनका कोई शत्रु अथवा मित्र नहीं होता वे किसी से राग अथवा द्वेष नहीं करते किंतु सर्व में अपने आत्मा, अच्युत, जनार्दन भगवान् को देखते हैं, सबको प्यार करते हैं, सबका कल्याण चाहते हैं, राज्य आदि की भी

OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

उनको इच्छा नहीं होती, इन्द्र पदको भगवान् के भक्त तुच्छ समझते हैं, क्योंकि वे अपने आनन्द स्वरूप के लाभ से ही संन्तुष्ट होते हैं, इसलिये इससे तुझे किसी प्रकार का भय नहीं है, यह तो एक अपने आत्मा केशव में ही रतहोगा, उन्हीं से प्रीति करेगा, उनसे ही संतुष्ट होगा, उनकी ही भक्ति करेगा ! इसके गुण और चरित्रों का गान करके बहुत से पापी तक भी पापों को धोकर संसार समुद्र से तर जांयगे, इससे तू किंचित् भय मतकर, मेरा वचन सत्य मान कर इसकी माता को तू छोड़दे, मैं इससे अपनी पुत्री के समान अपने आश्रम में रक्खूंगा !

हे दैत्य बालको ! नारद जी के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र मेरी माता को नारद जी को देकर स्वर्गको चला गया और नारद जी मेरी माता को अपने आश्रम में ले आये और इस प्रकार कहने लगे–

नारद–हे बाले जबतक तेरा पति मंदराचल पर्वत से तप करके लौटकर आवे, तबतक तू यहां, सुख पूर्वक वास कर, यहां तुझे किसी का भय नहीं है।

प्रल्हाद–हे मित्रो मेरी गर्भिनी सती माता नारद जी के आश्रम में रहकर अपने गर्भ की रक्षा के लिये परम भक्ति से ऋषि की परिचर्या करने लगी। दयालु समर्थ ऋषि ने उसके शोक की शान्ति के लिये धर्मका तत्त्व यानी भगवद्भक्ति और निर्मल ज्ञान यानी आत्मा अनात्मा का विवेक दोनों दिये। ऋषि का अभिप्राय यह था कि भक्ति और ज्ञान का उपदेश देने से मेरी माता को तो शान्ति होवेगी ही और इसके गर्भ में जो बालक है, उसके हृदय में भी भक्ति ज्ञान के संस्कार पड़जांयगे। इस प्रकार नारद जी का दिया हुआ, भक्ति और ज्ञानका उपदेश मेरी माता और मैं दोनों ने सुना। दीर्घकाल होने से और स्त्री स्वभाव होने से मेरी माता का ज्ञान तो लोप होगया परंतु ऋषि के अनुग्रह से मुझे अब तक ज्ञान की स्मृति बनी हुई है। यदि तुम मेरे वचनों पर श्रद्धा करोगे, तो जैसे मुझे निर्मल बुद्धि प्राप्त हुई है, यानी जैसे देहादि अहंकार का छेदन करने वाला ज्ञान मुझे हुआ है, वैसा ही तुमको भी हो जायेगा और ज्ञानके पाने से तुम सर्वदा के लिये सुखी हो जाओगे, फिर न किसी प्रकार का मोह होगा, न मोह से उत्पन्न होने वाला शोक होगा और न भय होगा। और तो क्या, सबसे बली जो काल है, जो सबके ऊपर शासन करता है, सबको खाजाता है, उसका भी तुमको स्वप्न में भी कभी भय नहीं होगा ! सर्वदा के लिये अजर अमर हो जाओगे !

हे मित्रो ! जिस निर्मल बुद्धि से मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त होकर निर्भय, अजर और अमर हो जाता है, इसी निर्मल बुद्धि को यानी नारद जी आत्मा अनात्मा के विवेक कराने वाले ज्ञानको नारद जी के कथनानुसार मैं तुमको बताता हूं, ध्यान देकर सुनो ! जायते यानी जन्मता है, अस्ति यानी होता है, वर्धते यानी बढ़ता है, विपरिणमते यानी बदलता है, अपक्षीयते यानी घटता है और नश्यति यानी नष्ट होता है, ये छ विकार देहके हैं आत्मा के नहीं हैं यानी देह जन्मता है, देह होता है, देह बढ़ता है, देह बदलता है, देह घटता है, और देह ही नष्ट होता है, आत्मा न तो जन्मता है, न होता है, न बढ़ता है, न बदलता है, न घटता है और न नष्ट होता है। जैसे वृक्ष को वृक्ष का द्रष्टा भिन्न है, इसी प्रकार देह का द्रष्टा आत्मा देह से भिन्न है, जैसे वृक्ष के जन्मादि धर्म हैं, वृक्ष के द्रष्टा के नहीं हैं, इसी प्रकार जन्मादि छः विकार देह के हैं, देह से

Pharmacy | L/Pharma | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

भिन्न देह के द्रष्टा आत्मा के नहीं है, जैसे घट से भिन्न होता है, इसी प्रकार देह का द्रष्टा आत्मा देह से भिन्न है। देह दृश्य होने से जड है आत्मा द्रष्टा होने से चेतन है, जड़ और चेतन रात और दिन के समान यानी अंधेरे और उजाले कि समान विरुद्ध स्वभाव वाले हैं, विरुद्ध स्वभाव वाले होने से रात और दिनके समान देह और आत्मा मिल नहीं सके फिर भी आत्मा के अज्ञान से दोनों का मेल भ्रम से भासता है, इस कारण सब प्राणी दुःखी हो रहे हैं, जो भाग्यवान अधिकारी ईश्वर गुरु की कृपा से दोनों का विवेक करलेता है, वह जन्म मरण रूप संसार से छूटकर परमानन्द स्वरूप ईश्वर को प्राप्त होकर सुखी और स्वतंत्र होजाता है, इसके सिवाय कल्याण का अन्य मार्ग नहीं है।

हे मित्रो ! ऊपर मैंने देह के धर्म बताकरदेह से आत्मा की विलक्षणता यानी भिन्नता दिखलायी, अब मैं आत्मा के धर्म बताकर आत्मा से देहकी भिन्नता दिखलाता हूं आत्मानित्य है यानी तीनों काल में अबाधित सत्य है अर्थात् अविनाशी है, जैसा कि श्रुति कहती है अरे मैत्रेयी ! यह आत्मा अविनाशी है। आत्मा अव्यय है यानी अपव्यय से रहित है यानी कभी घटता नहीं है, जैसा कि श्रुति कहती है परम अक्षर में आकाश ओतप्रोत है। आत्मा शुद्ध है यानी सर्व उपाधियों से रहित है, जैसा की श्रुति कहती है। 'निरवद्य निरंजन है।' यह आत्मा एक है, यानी दूसरे से रहित है, जैसा कि श्रुति कहती है–एक ही अद्वितीय है'। यह आत्मा सर्वज्ञ है यानी सब क्षेत्रों का जानने वाला है, जैसा कि श्रुति में कहा है। अरे विज्ञाता को किस से जाने यानी सबके जानने वाले को कौनसी वस्तु के द्वारा जाने'। यह आत्मा आश्रय है यानी सबका अधिष्ठान है अर्थात् सबके रहने का अधिकरण है, जैसा कि श्रुति में कहा है। 'जिसमें स्वर्ग, पृथिवी और अंतरिक्ष हैं। आत्मा आविक्रिय है यानि विकार से रहित है, जैसा कि श्रुति में कहा है 'निष्कल, निष्क्रिय और शान्त है।' यह आत्मा स्वदक् है यानी स्वयं ज्योति है अर्थात् स्वयं प्रकाश है, जैसा कि श्रुति में कहा है। 'उसने कहा सम्राट् है !' यह आत्मा हेतु है यानी सबका कारण है, जैसा कि श्रुति में कहा है। 'उसने इन लोकों को उत्पन्न किया'। यह आत्मा व्यापक है यानि सब में भरा हुआ है, जैसा कि श्रुति में कहा है 'सत्य, ज्ञान और अनन्त ब्रह्म है, यानी संग से रहित है, जैसा कि श्रुति ने कहा है। 'यह पुरुष असंग है।' यह आत्मा अनावृत है यानी आवरण रहित है जैसा कि श्रुति मेंकहा है। 'पूर्ण का पूर्ण ही लेकर पूर्ण ही शेष रहता है।

हे मित्रो ! आत्मा से देह सर्व प्रकार से विरुद्ध लक्षण वाला है, आत्मा अविनाशी है और देह विनाशी है, आत्मा अव्यय यानी अपक्षय से रहित है, और देह अपक्षय वाला है, आत्मा शुद्ध है, देह अशुद्ध है, आत्मा एक है, देह अनेक हैं, आत्मा क्षेत्रज्ञ है, देह क्षेत्र है, आत्मा आश्रय है, देह आश्रित है, आत्मा अविक्रिय है, देह विक्रिय हैं, आत्मा स्वयं ज्योति है, देह पर ज्योति हैं, आत्मा हेतु यानी कारण है, देह कार्य है, आत्मा व्यापक है, देह व्याप्य है, आत्मा असंगी है देह संगी है, आत्मा अनावृत हैं, देह आवृत है, इस प्रकार आत्मा और देह दोनों परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले हैं, विरुद्ध स्वभाव वालों का मेल नहीं हो सका, इसलिये ऊपर के बारह विरुध लक्षणों से आत्मा और अनात्मा देह का विवेक करके देहादि में 'मैं' और 'मेरा' ऐसा जो भाव है, उसको त्याग दो, क्योंकि यह भाव मोह से उत्पन्न हुआ है यानी आत्मा और अनात्मा के अविवेक से हुआ है, वास्तविक नहीं है,

for details | SAUDI ARABIA

है, आत्मा और अनात्मा के विवेक से यह भाव निवृत्त हो जाता है, 'मैं' 'और मेरा' इस भाव के कारण से ही मनुष्य न होते हुए दुःख का भी अपने में अनुभव करता है, जब यह भाव दूर होजाता है, तो इसको कार्य दुःख भी निवृत्त होजाता है, इस लिये भ्रम से प्रतीत होने वाले 'मैं' और 'मेरा' इस-भाव को त्याग कर सुखी शान्त हो जाओ, यह नारद जी का मत है, और यह ही सब विद्वानों का मत है।

दैत्यपुत्र-हे मित्र आत्मा देह से भिन्न है, यह बात हमारी समझ में आती है, फिर भी मोह को हम त्याग नहीं सके, मोह न त्यागने से देहादि में 'मैं' और 'मेरा' भाव भी नहीं त्याग सके, इसके त्यागने का उपाय क्या है ? यानी उसको हम कैसे त्यागें, यह हमको बताना चाहिये।

प्रह्लाद-हे मित्रो ! इसके त्यागने का उपाय सुनो, जैसे सुवर्ण मिले हुए पत्थरों में से स्वर्ण-कार तपाने आदि उपायों से सुवर्ण को निकाललेता है, इसी प्रकार आत्मप्राप्ति के उपायों से आत्म ज्ञानी यानी कार्य कारण के संघात का जानने वाला देहों में से यानी स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों देहों में से आत्मा को भिन्न करके ब्रह्म गति को यानी ब्रह्म स्वरूपता को प्राप्त होता है। अनात्मा के विवेक का उपाय यह है कि मूल प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार और पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तन्मात्रायें आठ प्रकृतियां हैं, सत्व रज, तम ये प्रकृतियों के गुण हैं यानी ये तीनों प्रकृति से भिन्न नहीं हैं किंतु अभिन्न हैं, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां, एक मन, और पांच महाभूत ये सोलह विकार हैं। वाणी, हस्त, पाद, वायु और उपस्थ ये पांच कर्मेंद्रियों के नाम हैं, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रियां है। संकल्प विकल्प करने वाली अंतःकरण की वृत्ति का नाम मन है और आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पांच महाभूतों के नाम हैं। इस प्रकार आठ प्रकृति और सोलह विकार ये चौबीस तत्त्व कपि-लादि आचार्यों ने कहे हैं और पुरुष यानी आत्मा एक कहा है। एक कहने का कारण यह है कि चौबीस तत्त्वों का साक्षी होने से और उन सबमें पुरुष का समन्वय होने से पुरुष एक है। समन्वय नाम सम्बन्ध का है, चौबीस तत्त्व साक्ष्य यानी दृश्य और पुरुष साक्षी यानी द्रष्टा है। बिना द्रष्टा के दृश्य देखने में नहीं आसका, इसलिये दृश्य रूप चौबीस तत्त्व का द्रष्टा एक पुरुष है और सबसे उसका समन्वय यानी संबंध है।

हे मित्रो। इन चौबीस तत्त्वों के बने हुए हमारे, तुम्हारे और सबके स्थावर और जंगम देह में ही नेति नेति करके इस पुरुष को खोजना चाहिये। भाव यह है कि नेति नेति करके सब अनात्म पदार्थों का निषेध करने से एक आत्मा, पुरुष, साक्षी ही शेष रहता है, जो शेष रहता है, वह ही आत्मा पुरुष है, यानी सबका अपना आप हैं और पूर्ण है। हे मित्रो ! नेति २ करके विशेष करने का प्रकार यह है कि पृथिवी तत्त्व का बना हुआ यह स्थूल देह दृश्य होने से आत्मा नहीं है, आकाश के सतोगुण अंश से बनी हुई श्रोत्रेन्द्रिय वायु के सतोगुण अंश से बनी हुई त्वक् इन्द्रिय, तेज के सतोगुण अंश से बनी हुई नेत्रेन्द्रिय जलके सतोगुण अंश से बनी हुई रसन्द्रिनेय, और पृथिवी के सतोगुण अंश से बनी हुई नासिकाइन्द्रिय ये सब दृश्य होने से आत्मा नहीं हैं, इसी प्रकार आका-शादि के रजोगुण अंश से बनी हुई वागादिक

Pharmacy | L/Pharma | | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

केन्द्रिय दृश्य होने से आत्मा नहीं है, सब भूतों के सतोगुण अंश से बना हुआ मन और सब भूतों के रजोगुण अंश से बना हुआ प्राण दृश्य होने से आत्मा नहीं है इन सबका और इन सबके अभाव का द्रष्टा जो आत्मा है, वह ही आत्मा पुरुष है, उसी को अपना स्वरूप जानो !

पाठक ! प्रल्हाद का आगामी उपदेश आगे के लेख में दिखावेंगे। इस सबका सार यह है।

कुं-देही द्रष्टा जानिये, देह जानिये दृश्य।
इन दोनों के मेल से, देत दिखायी विश्व ॥
देत दिखायी विश्व, देह से मेल किये से।
नांही दीखे विश्व, देह का मेल तजे से ॥
भोला ! मन है दृश्य, विश्व सब है मन में ही।
मन होजावे लीन, शेष रह जावे देही ॥

जय गिरधारी

[रचयिता रामनारायण शुक्ल साहित्य-रत्न]

जय २ श्री जगदीश जयति जय विपिन विहारी।
जय श्री राधा रमण श्यामसुन्दर बनवारी ॥
जय २ श्री गोविन्द जयति गोपाल गोपवर।
जय २ श्री घनश्याम मदन मोहन मुरलीधर ॥ १ ॥
जय २ श्री बृजरमणचन्द्र यशुदा के वारे।
जय २ श्री यदुनाथ भक्त नैनन के तारे ॥
जय २ श्री आनन्दकंद जय कृष्ण मुरारी।
जय २ श्री नंद नदन जयति जय जय गिरधारी ॥ २ ॥

OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

SAUDI ARABIA

तत्त्वोपदेश

[ले० श्री महात्मा राम भगवद्भक्ति आश्रम]

आत्म तत्व के जानने की इच्छा वाला कोई अधिकारी शिष्य विधिवत् गुरु को प्राप्त होकर प्रश्न करता है।

हे गुरु ! इस देह में आत्मा किस का नाम है अर्थात् किसी एक इन्द्रिय का नाम आत्मा है अथवा मन का नाम आत्मा है वा प्राण का नाम आत्मा है। जिसका नाम आत्मा है उसको मैं आप से जानना चाहता हूं। इस प्रकार शिष्य का प्रश्न सुनकर श्री गुरुदेव उत्तर देते हैं।

हे शिष्य ! इस देह में आत्मा रूप तू सबसे न्यारा है और तेरा ही नाम आत्मा है। तू इस देह रूप घरमें निवास करने वाला है और मन इन्द्रिय प्राणादि सब तेरे सेवक हैं। तू अपनी तरफ न देख कर इस देह के अवयवों में वर्तरहा है इस लिये अपने आपको भूलगया। जब तुझे इन इन्द्रियों के साथ कुछ सुख नहीं मिला तब तू इन विषयों से असंतुष्ट होकर अपने आत्म स्वरूप को खोजना चाहता है। वास्तव में आत्मा से भिन्न संसार में सुख हैं भी कहां किन्तु सब जगत् दुःख रूप है। केवल आत्मा ही सुख स्वरूप है जिसको आत्म सुख का लाभ होगया है उसे जगत् के तुच्छ विषय-सुख की इच्छा नहीं होती।

हे शिष्य ! इस देह के इन्द्रियादि सभी अवयव उत्पत्ति नाशवान और परिणामि हैं। और तू आत्मा अजन्मा अविनाशी सदा एक रस रहने वाला है। तू देह रूप इसलिये नहीं है कि यह देह नेत्रादि इन्द्रियों का विषय है तथा देह में जातिपना आदि अनेक धर्म हैं तथा पंच भूतों का कार्य रूप है तथा मल मूत्रादि से अति अशुद्ध है और उत्पत्ति नाश-वाला है। और तू आत्मा अदृश्य अर्थात् मन इन्द्रियों का अविषय है क्योंकि तुझ आत्मा का कोई आकार नहीं है। और न आत्मा में कोई जाति पना है क्योंकि आत्मा पंच भूतों का कार्य रूप नहीं है किन्तु नित्य शुद्ध स्वरूप अविनाशी तू सब का द्रष्टा है घटादि पदार्थों के समान तू दृश्य रूप नहीं है अतः तू देह से न्यारा है। तू इन्द्रिय रूप भी नहीं है क्योंकि यह इन्द्रियां करण रूप हैं। यह बात श्रुति में भी कही है तू इन सब इन्द्रियों का प्रेरक इन्द्रियों से न्यारा है जो सब भृत्यरूप इन्द्रियों का प्रेरना करने वाला राजा है वह भृत्यरूप किस प्रकार हो सका है। इन्द्रियां अनेक हैं और तू एक है जब सब इन्द्रियें मिल कर भी आत्मा नहीं हो सकी तब एक एक इन्द्रिय तो आत्मा किस प्रकार हो सके हैं। तू आत्मा प्रत्येक इन्द्रिय के साथ प्रतीत होता है और इन्द्रियें भिन्न भिन्न हैं। और यदि तू देह इन्द्रियों में ही आत्म बुद्धि करेगा तो तेरा यह देह शीघ्र ही नाश को प्राप्त होगा। जैसे अनेक स्वामियों के आश्रित एक आश्रय नाश को प्राप्त होता है तैसे नाना आत्मारूप इन्द्रियों के आश्रित यह एक

Pharmacy | L/Pharma | | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

ही देह नाश को प्राप्त होगा। कारण यह की सब इन्द्रियों के विषय एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाव वाले हैं। कोई इन्द्रिय इस देह को उत्तर दिसामें अपने विषय की तरफ खैंचेंगे और कोई दक्षिण दिशा की तरफ खैंचेंगे इस प्रकार अनेक दिशाओं में खैंचा हुआ यह देह नाश को ही प्राप्त होगा अतः इन्द्रियें भी आत्मा नहीं है। इसी प्रकार प्राण तथा मन भी आत्मा नहीं हैं क्योंकि ये जड़ स्वभाव वाले हैं और आत्मा चैतन्य स्वरूप है।

अथवा मेरा मन इस समय अन्यत्र गया इस अनुभव से भी आत्मा मन से न्यारा है। और भूख तथा प्यास से आज मेरे प्राण संकट में हैं भूख प्यास प्राणों का ही धर्म है इस अनुभव से आत्मा प्राण से भी न्यारा है। अथवा सुषुप्ति अवस्था में मन इन्द्रियादि सर्व साधन अपने कारण रूप अविद्या में लय होजाते हैं! और चैतन्य आत्मा की छाया को ग्रहण करने वाली बुद्धि भी कारण रूप अविद्या में लीन होजाती है जाग्रत के संस्कार वाली बुद्धि की चंचलता वहां नष्ट होजाती है। केवल स्वयं प्रकाश स्वरूप आत्मा ही द्रष्टा रूप से विराजमान रहता है। यद्यपि सुषुप्ति अवस्था में प्राण बराबर चलता रहता है। परन्तु यह जड़ स्वभाव वाला है सोते हुए पुरुष की कोई चीज हरण करने पर भी प्राण उसको नहीं जगाता अतः प्राण जड़ है। आत्मा चैतन्य है और प्राण तथा मनसे न्यारा है तथा सब का द्रष्टा है।

जैसे जाग्रत अवस्था में मन प्राण इन्द्रिय आदि सबका साक्षी आत्मा सबसे न्यारा है तैसे स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था में भी आत्मा सबका साक्षी और सबसे न्यारा है। आत्मा स्वयं प्रकाश स्वरूप है किसी प्रमाण का विषय नहीं है। जो सबको अपना प्रकाश देता है उसको कौन प्रकाश दे सक्ता है 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'। उस आत्मा के प्रकाश से ही यह सूर्य चन्द्रमा आदि सब प्रकाश वाले हैं।

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'।

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे मैत्रेई! जो सबका ज्ञाता है उसे कोई किस साधन से जान सक्ता है। अतः आत्मा प्रमाणों का अविषय होने से अप्रमेय है और जो प्रमाणवादी आत्मा को प्रमाणों का विषय मानते हैं वो मानो काष्ठों से अग्नि को भस्म करना चाहते हैं।

जब सभी प्रमाण आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हुए प्रवृत्त होते हैं तब वह प्रमाण आत्मा का प्रकाश किस प्रकार करेंगे। आत्मा विश्व को प्रकाशता है विश्व आत्मा को नहीं प्रकाशता, आत्मा इदं अनिदं रूप से नहीं कहा जाता है। आत्मा कभी भी किसी को परोक्ष नहीं है किन्तु सदा ही सबको अपरोक्ष है क्योंकि आत्मा अपना आपही है। जिसके अंतर और कुछ भी नहीं है वह सर्वान्तर्यामी आत्मा सब का द्रष्टा है और वह साक्षी द्रष्टा आत्मा तू आपही है तू दृश्य रूप नहीं है। यह जो दृश्य रूप प्रपंच तुझे प्रतीत होरहा है यह सर्वथा निषेध करने योग्य है और अवाच्यरूप जो तू आत्मा है वह सर्व का साक्षी स्वयं प्रकाश स्वरूप है किसी प्रमाण का विषय नहीं हैं किन्तु स्व संवेद्य है। 'सत् चित् आनन्द और अनन्त, यह ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है और 'सत्चित् आनन्द तथा अनन्त रूप होने से तू भी ब्रह्म रूप ही है।

देह इन्द्रिय मन आदि उपाधियों का नियामक जीव है और माया शक्ति रूप उपाधि का नियामक ईश्वर है दोनों की उपाधियों को भेद है उपाधिवालों

for details go desktop
OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

का सदा अभेद है उपाधियों का बाध करके केवल शुद्ध स्वरूप स्वयं प्रकाश शेष रहता है।

इस स्वयं प्रकाश रूप आत्मा की सभी प्रमाण अपेक्षा करते हैं और जो अपनी सिद्धि में किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता है। उस आत्मा के बोध में केवल वेद ही प्रमाण माना जाता है वेद वाक्यों से ब्रह्मात्मा के एकत्व का ज्ञान होता है। इसलिए वेद वाक्य प्रमाण माना गया है। जैसे 'तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्य ब्रह्मात्मा के एकत्व को विषय करते हैं। जिस युक्ति से तुझे ब्रह्मात्मा के एकत्वका ज्ञान होगा वह युक्ति मैं अब तेरे लिये कहता हुं। देह इन्द्रिय आदि मिथ्या धर्मों का जो अपने आत्मा में आरोप करता है और जो कर्तृत्वादि धर्मों का अभिमान करता है वह जीवात्मा 'त्वं' पद का 'वाच्य अर्थ' है। और जो देह इन्द्रिय तथा कर्तृत्वादि धर्मों का साक्षी है वह उन देह इन्द्रियों से विलक्षण स्वभाव वाला स्वयं प्रकाश बोध स्वरूप होने से 'त्वं' पद का 'लक्ष्यार्थ' है और जो परमात्मा वेदन्त वाक्यो से जाना जाता है जो विश्वरूप प्रपंच से शून्य है तथा जो अविनाशी अक्षर शुद्ध स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म है वह 'तत्पद' का 'लक्ष्यार्थ' है। और जो माया विशिष्ट ईश्वर है वह 'तत्पद' का 'वाच्यार्थ' है। 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य गत तत् त्वं पदों के अर्थ का यद्यपि विरुद्ध होने से भेद ही प्रतीत होता है तथापि तत्त्वमसि इन दोनों पदों का समानाधिकरण है। समानाधिकरण्य अभेद स्थल में ही होता है अतः वेदान्त शास्त्र वाले आचार्य जीव ब्रह्म की एकता मानते हैं। जिन दो पदों की प्रवृत्ति का निमत्त भिन्न भिन्न होवे और वास्तविक अर्थ एक ही होवे उन पदों का सामानाधिकरण होता है। जैसे 'सोऽयंदेवदत्तः' भिन्न प्रवृत्ति निमित्तानां शब्दानां मेकस्मिन्नर्थेवृत्ति सामानाधिकरण्यम्' सोऽयंदेवदत्तवत्।

'तत् त्वं' इन दो पदों का वाच्यार्थ रूप प्रवृति का निमित्त यद्यपि भिन्न भिन्न हैं तथापि लक्ष्यार्थ दोनो पदों का एक ही है इसको सामानाधिकरण कहते हैं जैसे सोऽयं देवदत्तः अर्थात् यह वही देवदत्त नामा पुरुष है जो पहले देखा था।

इस प्रकार तत्त्वमसि इन दो पदों का लक्ष्य लक्षण भाव सम्बन्ध है तथा विशेष्य विशेषण भाव सम्बन्ध भी है जैसे 'स अयं अयं स' इति।

यहां शिष्य का प्रश्न है कि जब तत् त्वम् पद अपने अर्थ को स्वयं ही बोधन कर रहे हैं तब लक्षणाप्रवृत्ति की क्या आवश्यका थी। इसका उत्तर कहते हैं कि 'तत्पद' वाच्य जो ईश्वर है वह सर्वज्ञ है सर्व शक्तिमान है व्यापक है तथा परोक्ष है और माया उपाधिवाला है। और 'त्वं' पद वाच्य जीवात्मा अल्पज्ञ अल्पशक्ति, परिछिन्न अपरोक्ष रूप और अविद्या तथा देहादि उपाधि वाला है। इस प्रकार दोनों पदों के वाच्यार्थ परस्पर विरुद्ध स्वभाव होने से भिन्न भिन्न हैं तथापि पदों का 'समानाधिकरण' एकत्व रूप अर्थ को बोधन करता है। उस एकत्व अर्थ का ग्रहण शक्ति वृत्ति से न होते हुए तथा वेद बाह्य अन्य प्रमाणों का अविषय होने से लक्षणा वृति का ग्रहण किया गया है। पदों के मुख्यार्थ का अग्रहण ही लक्षणा के प्रवृत्ति का बीज कारण है अर्थात् जिस स्थल में पदों के मुख्यतात्पर्य का ग्रहण जब किसी प्रकार भी नहीं होता हो तब; वहां लक्षणा की जाती है।

लक्षणा तीन प्रकार की होती है जहत् १ अजहत् २ जहदाजहत् ३ (भागत्याग) तत् त्वं पदों

Pharmacy | U/Pharma | | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

में जहत् लक्षणा इसलिये नहीं होती कि जहत् लक्षणा में वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग होकर उसके सम्बन्ध अन्यार्थ में लक्षणा होती है। जैसे 'गंगायां घोषः' अर्थात् किसी ने कहा कि गंगा में घर है परन्तु गंगा पद का वाच्यार्थ जल का प्रवाह है उसमें घरका होना असंभव जानकर गंगापद के वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग करके गंगा के समीप वर्त्ति किनारे पर लक्षणा से घरका ज्ञान होता है। तैसे यहां तत् त्वं पदों का वाच्यार्थ सर्वथा नहीं त्यागा जाता किन्तु एक भाग का त्याग किया जाता है।

और अजहत् लक्षणा इसलिये नहीं होती कि इसमें वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग न होकर उसके संबंधी अन्य अर्थ का ग्रहण होता है। जैसे किसी आप्त व्यक्ता पुरुष ने कहा कि 'श्रोणोधावति' अर्थात् लाल रंग दौड़रहा है श्रोण लाल रंग का नाम है लाल रंग में दोड़ना बनता नहीं किन्तु लाल रंग का घोड़ा दोड़ता है ऐसा लक्षणा से ज्ञान होता है यहां लाल रंग का सर्वथा ग्रहण करके अधिक अर्थरूप घोड़े का ग्रहण किया गया है और तत्त्वं पदों में विरोधी अर्थ का त्याग होता है अतः अजहत् लक्षणा नहीं होती परिशेष रही जो जहदाजहत् है उसी का ग्रहण किया गया है ।

'वाच्यार्थस्यैक देशं च परित्यज्यैक देशकम् ।
या बोधयति सा ज्ञेया तृतीयाभाग लक्षणा ॥'

वाक्य अर्थ के एक देशका त्याग करके दूसरे एक देश का जिस लक्षणा से बोध होता है उस लक्षणा को भागत्याग लक्षणा कहते हैं। भागत्याग और जहदाजहत् इसी लक्षणा के दो नाम हैं जैसे सोऽयं देवदत्तः। उदाहरण दिखलाते हैं।

कुरुक्षेत्र निवासी दो पुरुष यात्रा करते हुए काशी में गये वहां उन्होंने देवदत्त नाम वाले एक पुरुष को देखा वह नाना रत्नों से युक्त भूषण पहने हुए हाथी पर सवार था उसके शिरपर सुवर्णमय छत्र था और दो आदमी चंवर करते थे बड़ी कान्तिमय हृष्ट पुष्ट शरीर था। जब वह यात्री अपने देश में आगये तब कुछ काल बीतने पर उस देवदत्त पुरुष को दैवगति से उन यात्रियों ने कुरुक्षेत्र देश में देखा उस के जीर्ण तथा मैले वस्त्र थे कृश शरीर था प्यादा नंगेपैर घर २ भीख मांगता फिरता था तब एकने दूसरे यात्री से कहा 'सोऽयंदेवदत्तः' अर्थात् यह वही देवदत्त है जो काशी में हाथी पर सवार देखा था। तब दूसरे यात्री ने कहा कि वह कदापि नहीं हो सका कहां वह और कहां यह वह राजकुमार था नाना अलंकारों से भुषित हाथी पर सवार शिरपर छत्र और चंवर थे काशी देश में था हृष्ट पुष्ट शरीर था और कितने काल पहले उसे देखा था। और यह कोई भिखारी है इसके मैले तथा जीर्ण वस्त्र है कृश शरीर है बिचारा नंगे पैर भीख मांगता फिरता है इस कुरुक्षेत्र तथा वर्तमान काल में है यह वह देवदत्त किस प्रकार होसका है। तब दूसरे यात्री ने कहा कि भाई इसकी और उसकी उपाधियों में तो जरूर भेद है परंतु उपाधि वाला जो इसका देह मात्र है उसमें भेद नहीं है उस व्यतीत काल की जो उपाधियें थी वो किसी कारण से इसकी छिनगई और यह वर्तमान काल की उपाधियें जो तुम देख रहे हो किसी काल में ये भी न रहेंगी परन्तु इसका देह मात्र नहीं बदलेगा अतः तुम दोनों काल की उपाधियों का त्याग करके इसके देहमात्र को देखो इस प्रकार यह वही देवदत्त नाम वाला पुरुष है निःसंदेह यह सत्य ही है। इस युक्ति से उस दुसरे यात्रि ने भी ठीक समझलिया और पहिचान लिया कि यह वही देवदत्त है जो काशी में

SAUDI ARABIA

देखा था ।

इसी प्रकार तत्त्वमसि वाक्य तत् त्व पदों के वाच्यार्थ का ही भिन्न २ उपाधियों के कारण भेद है वास्तविक पारमार्थिक लक्ष्यार्थ में कोई भेद नहीं है। त्वं पदार्थ रूप जीवात्मा के अल्पज्ञत्वादि धर्म तथा तत्पदार्थ रूप ईश्वर के सर्वज्ञत्वादि धर्म रूप एक देशका त्याग करके चैतन्य मात्र, शुद्ध स्वरूप, स्वयं प्रकाश, कूटस्थ, अद्वितीय रूप तत्त्वं पदों के एक देश को अभिन्न रूप से लक्षणा वृत्ति बोधन करती है। इस प्रकार तत्त्वमसि आदि महा वाक्यों के लक्ष्यार्थ को लक्षणा वृत्ति से अच्छी तरह जानने पर ब्रह्मात्मा के एकत्व का दृढ ज्ञान उत्पन्न होता है। जिस पुरुष को मैं ब्रह्म स्वरूप हूं ऐसा ज्ञान जब उत्पन्न होता है तब वह पुरुष शोक मोहादि सर्व दुःखों से छुटकर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है 'तरतिशोकमात्मवित्'। आत्म ज्ञान वाला पुरुष कोश उपलक्षित सर्व दुःखों को तरजाता है यह श्रुति में कहा है। शोक मोहादि रूप सागर से पार उतारने वाला ज्ञान, गुरु कृपा से ही प्राप्त होता है अन्यथा नहीं होता 'आचार्यवान्पुरुषोवेद'। आचार्य के अनुग्रह वाला पुरुष ही आत्मा के स्वरूप को जान सकता है यह श्रुति में कहा है। अतः इस अनादि संसार के आवागमन रूप चक्कर से पार होने के लिये योग्य गुरु को प्राप्त हो कर इस संसार चक्कर से छुटकारा पालेना ही परं पुरुषार्थ माना गया है। इसलिये गुरु के अनुग्रह को प्राप्त होकर ब्रह्मात्मा के तत्व ज्ञान से इस दृश्यमान असत् जड़ प्रपंच को लय करके अद्वितीय सत् चित् आनन्द स्वरूप अपने आत्मा में सदा के लिये। स्थिति करलेना चाहिये। जो अद्वितीय चैतन्य घन ब्रह्म सर्वका आत्मा रूप से निरन्तर प्रत्यक्ष रहता है वही ब्रह्म वेदान्तों में प्रतिपादन किया है।

जो सुख स्वरूप है वही सत् और चैतन्य स्वरूप भी है और जो दुःख रूप है वह असत् और जड़ रूप है इन दोनों पदार्थों का वेदान्तों में अच्छी तरह निर्णय किया है। जो अनेक युक्तियों से निर्णय किया गया अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप शुद्ध ब्रह्म है वही निःसंदेह तू है और यह द्वैत प्रपंच सदा ही असत्य है।

नित्य शुद्ध स्वरूप तुझ आत्मा में यह दृश्य मान अशुचि अनेक विकार युक्त देह इन्द्रिय आदि भ्रम से ही प्रतीत होते हैं। जैसे शुक्ति में रजत और रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है तैसे ही परमात्मा में जगत् की प्रतीति है वास्तवमें सत्य नहीं है। उस परमात्मा से भिन्न करके इस जगत् की अपनी सत्ता कुछ भी नहीं है।

'नासतोः विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'।

क्योंकि सत्य का कभी अभाव नही होता और असत् का कभी भाव नहीं होता यह दोनों परस्पर एक दूसरे से विरुद्ध हैं। ज्ञानोदय काल मे इस जगत् का नाश होजाता है तथा आदि अन्त वाला होने से यह जगत् मध्य काल में भी असत् ही है।

'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः'॥

यह जागत् अवस्था में दीखने वाला दृश्यमान जगत् अन्त के अभाव वाला होने से असत् ही है क्योंकि जो वस्तु आदि और अन्त में नहीं है वह वर्तमान में भी नहीं है जैसे मृग तृष्णा का जल आदि अन्त में भी नहीं है तथा वर्तमान में भी नहीं है केवल भ्रम मात्र है। जैसे मृग तृष्णा का जल असत् होकर भी सत्य के समान ही प्रतीत होता है

Pharmacy | L/Pharma | Environmental Science | 3 Positions

तैसे ही यह जगत् असत् होकर भी सत्य के समान प्रतीत होता है। और अज्ञान काल में सब जीवों को यह जगत् सत्य के समान ही प्रतीत होता है इसलिये इस जगत् को असत् भी नहीं कह सकते अतः सत् असत् दोनों से विलक्षण स्वभाव वाला यह जगत् अनिर्वचनीय रूप है ऐसा आचार्य लोग मानते हैं!

इस नाम रूपात्मक जगत् की उत्पत्ति से पूर्व जो एक मात्र सत् चित् आनन्द स्वरूप परब्रह्म था उसने इस जगत् को उत्पन्न करके और इस जीव भाव को ग्रहण कर इन समस्त शरीरों में प्रवेश किया 'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'। तथा

'अनेन जीवेनात्मनानु प्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति'।

वह परमात्मदेव इस जगत् की रचना करके इसमें प्रवेश कर्ता हुआ। तथा इस जीवात्म भाव से उस परमात्मा ने जगत् में प्रवेश करके नाम तथा रूप को प्रकट किया इत्यादि अनेक श्रुतियां इसी अर्थ को कथन करती हैं अतः तू वही पर ब्रह्म स्वरूप है। तू अपने सत् चित् आनन्द स्वरूप को भूलगया और अपने आपको जीव रूप मानने लगा हैं। जब तुझे अपने आत्मस्वरूप का बोध होगा तब अपने पूर्व रूपको पहचानेगा, जब तू अपने अद्वितीय नित्य शुद्ध ब्रह्म स्वरूप को निश्चय करेगा तब साम्राज्य पद को प्राप्त होगा। अब तुम अपने ब्रह्मस्वरूप का विचार करो और कर्तृत्वादि अहंकार से प्राप्त हुए इस दीन भाव को त्याग दो। इस विषय में एक अपूर्व वृतान्त जो श्रुति में कहा है वह तुमसे मैं कहता हूं तुम ध्यान देकर सुनो। एक आदमी गान्धार देश का रहने वाला बहुत धनवान् था उसके शरीर पर बहु मूल्य रत्नों वाले भूषण थे वह उन भूषणों को निरन्तर अपने शरीर पर धारण कीये रहता था एकदिन वह अपने गृह के आंगन में पलंग पर अचेत सोया पड़ा था मदिरा का नशा हो रहा था ऐसी अवस्था में उसको पलंग सहित चोर तस्कर उठाकर लेगये। और बहुत दूर देश में पहुंचकर उसका रत्नादिक धन हरण करलिया और उसके हाथ पावों को रस्से से मजबूत बांधकर तथा आंखे कपड़े से बांधकर कन्टकों वाले निर्जन वन में छोड़ दिया!

जिस वनमें सर्प व्याघ्रादि अनेक भयानक जीव शब्द करते थे ऐसे भयानक वनमें जो सर्वथा दुःख रूप था नंगे पैर वस्त्र रहित भूख प्यास से पीड़ित वायु और अग्नि से संतप्त हस्त पादादि के बन्धन से छूटने में असमर्थ ऐसी अति कष्ट रूप अवस्था को प्राप्त हुआ अपने गृह तथा सम्बन्धियों को याद करके बारम्बार चारों दिशाओं को मुख करके पुकारता था। परन्तु उस निर्जन वनमें कोई मनुष्य नहीं था जो उसको बन्धन से मुक्त करता। जब वह उन निर्दय तस्करों के कर्म से दुःखी होकर बहुत काल तक दुख में पड़ा रहा। तब दैवयोग से कोई दयालु पुरुष मार्ग में जाते हुए उस दुःखी पुरुष की आवाज सुनकर उसके पास आगया और उसके बन्धन का वृतान्त सुनकर करुणा से उसका हृदय भरगया और उसके हाथ पावों तथा आंखों के बन्धनों को खोलदिया और उसको गान्धार देश का सीधा रास्ता बता दिया। तब वह बुद्धिवान् पुरुष ग्रामदर ग्राम घूमता हुआ मार्ग चलने में तत्पर गान्धार देश में पहुंच कर अपने गृह में गया और अपने कुटुम्बियों से मिलकर अति प्रसन्न हुआ। पश्चात् अपने धन ऐश्वर्य को पाकर पर सम्राज्य पद में आरूढ होकर अपार सुखको अनुभव करने लगा।

OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

उसी प्रकार उस गांधारी पुरुष के समान यह जीवात्मा जिसका शम, सन्तोष विचार और वैराग्यादि रत्नों से युक्त स्वात्मानन्द रूप धन है।

ऐसे स्वात्मानन्द रूप धन को हरण करने वाले राग द्वेष रूप शत्रु तथा देहाभिमानादि तस्करों ने जीवात्मा को अपने आत्मा के अज्ञान रूप निद्रा के वशी भूत हुए को, भोगों की तृष्णा रूपी बन्धन से दृढ़ बांधकर तथा मोह रूप पट से विचार रूपी आंखें बन्द करके उस जीवात्मा के स्वानन्द रूप धन को हरण करके उन रोगादि धूर्तों ने देह में जन्मादि रूप से बड़े भारी संसार रूप अरण्य वन में अति दूर लेजाकर सर्व दुःखों के कारण रूप देह अथ में नाना योनियों में अज्ञान से किये हुए कर्मों की वासना से निर्मित इस देह के जन्म मरणादि रूप अरण्य वनमें लाकर छोड़दिया। अनादिकाल से यह जीवात्मा सदा ही अनेक प्रकार के दुःखों को अनुभव करता आता है। जन्म, मरण, बुढ़ापा और नरक आदि अनेक परम्परा से निरन्तर दुःखों के भोगने से अतिशोकातुर हो अविद्या रूपी बन्धन जो अति दुःखों का मूल है उसके निवृत्ति के उपाय को नहीं देखकर तथा अपने आत्मानन्द की प्राप्ति के उपाय को न पाकर जैसे वह गान्धार देश वासी अति दुःख से आतुर होने पर चिरकाल में बन्धन से मुक्त हुआ था। तैसे ही चिरकाल पर्यन्त अनेक दुःखों के भण्डार रूप जन्मों में भ्रमते हुए दैव इच्छा से शुभ मार्ग में श्रद्धा उत्पन्न होकर वर्णाश्रमाचार के अनुसार शुभ कर्मों के संग्रह से महान पुण्योदय होने पर। ईश्वर के अनुग्रह से किसी ब्रह्मवेत्ता उत्तम गुरु को प्राप्त होकर उनकी आज्ञानुसार विधिवत् संन्यास ग्रहण करके तथा विवेकादि साधन सम्पन्न होकर शुद्ध अन्तः करण में गुरु से ब्रह्म का उपदेश श्रवण करके। वैराग्य तथा अभ्यास में तत्पर होकर परम शान्ति को प्राप्त होगया। आचार्य कहते हैं कि हे शिष्य ! मैंने जो तुझे ब्रह्मका उपदेश किया है इसको तू अपने अन्तःकरण में धारण कर श्रुति में जिज्ञासु मुमुक्षु पुरुष के 'पण्डित और मेधावी, यह दो विशेषण कथन किये हैं। अनेक अनुकूल युक्तियों से वस्तु को विचार करने वालों को पण्डित कहा है और उस वस्तु में मनकी एकाकार वृत्ति रूप निदिध्यासन करने वाले को मेधावी कहा है। अतः तू भी मेरे उपदेश किये हुए आत्मा का विचार तथा निदिध्यासन करके परम पद को प्राप्त हो, मैंने तुझे यथा विधि से ही ब्रह्मात्मा का विज्ञान उपदेश किया है अब तू धैर्य पूर्वक इस आत्मा के अभ्यास में पूर्ण प्रयत्न से तत्पर होकर सर्व बन्धनों से मुक्त हो अपने संशयों को नाश कर और निर्द्वन्द्व तथा निःस्पृह होकर यथेच्छ विचर। हे शिष्य ! वास्तविक जो तेरा परमार्थ रूप आत्मा है वह तो सर्वदा निष्प्रपंच तथा नित्य ही मुक्त स्वभाव वाला है। इसलिये तुझमें बन्ध और मोक्ष भी नहीं है किन्तु दोनों ही तेरे स्वरूप में कल्पित हैं अतः कोई साधन वा अभ्यास भी निष्प्रयोजन हैं तथापि तुम विचार और अभ्यास करके अपने आत्मा को ऐसे स्वभाव वाला जान सके हो अपने आनन्द स्वरूप आत्मा को अपरिच्छिन्न रूप से साक्षात्कार करके इस जीवित देह में ही मुक्त होकर परम शान्ति को प्राप्त होजावो।

'विचारणीय वेदान्तो वन्दनीयो गुरुः सदा।
गुरुणां वचनं पथ्यं दर्शनं सेवनं नृणाम्' ॥
'यावदायुस्त्रयो वन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतिरेषैव निश्चयः' ॥
'भावाद्वैतं सदाकुर्यात्क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह' ॥

संस्कृत-साहित्य में श्रीकृष्ण

[संग्रहकर्ता, पं श्रीगंगाविष्णु पाण्डेयविद्याभूषण, "विष्णु"

विपिन विहारे कुसुम विचित्रा,
कुतुकित गोपीमहित चरित्रा।
मुररिपुमूर्तिर्मुखरित वंशा,
चिरमवताद् वस्तरलचलतंसा ॥ २८ ॥

वन विहार में फूलों से सुशोभित, कौतुक वाली गोपियों से प्रशंसित, वंशी बजाने और चंचल कुंडल वाली कृष्ण की मूर्ति तुम लोगों की रक्षाकरे।

यमुना विहार कुतुके कलहंसो,
व्रजकामिनी कमलिनी कृतकेलिः।
जन चित्तहारि कलकंठ निनादः,
प्रमदं तनोतु तव नंद नन्दनः ॥

यमुना के विहार में कौतुकी हंस, व्रजकामिनी रूप कमलिनियों के साथ खेलने वाला, जनों के चित्त का हरण करनेवाला है, कंठ निनाद जिसका ऐसा नंद बालक कृष्ण तुम्हें प्रहर्ष दे ॥ २९ ॥

फुल्लं वसंत तिलकं तिलकं वनाल्या,
लीलापरं पिककुलं कलमत्रगौति।
वात्येष पुण्य सुरभिर्मलयाद्रिवातो,
यातो हरिः स मथुरां विधिना हतास्मः ॥

वसंत ऋतु का तिलक पुण्य वनश्रेणी फूला है, क्रीड़ा में मत्त कोकिलवृंद, मधुर मधुर बोलता है, और पुण्यों से सुगंधित मलयका वायु वह रहा है, और हरि मथुरा को गये हैं। हम गोपियां भाग्य से मारी गई ॥ ३० ॥

दुर्जय दनुज श्रेणी दुश्चेष्टा शतसंचकिता,
यद्भुज परिघत्राता, याता साध्वस विगमम्।
दीव्यति दिविषन्माला शश्वन्नंदन त्रिपने,
गच्छंतं शरणं कृष्णं तं भीता भवरिपुतः ॥

दुर्जयदानवों के सैकड़ों अत्याचारों से घबड़ाई हुई देवताओं की पंक्ति, जिस कृष्ण की भुजा-रूपी अर्गलासे रहित निर्भय होकर निरंतर नंदन-कानन में विहार करती हैं। संसार शत्रु से डरे हुए तुम लोग उस कृष्णकी शरण को जाओ, वही रक्षा करेगा ॥ ३१॥

दुरंत दनुजेश्वर प्रकर दुरस्थ पृथ्वी भरं,
जहार निजलीलया यदुकुलेऽवतीर्यो शयः।
स एष जगतां गतिर्दुरित भारमस्मादृशां।
हरिष्यति हरिः स्तुति स्मरण चाटुभिस्तोषितः॥

दुर्जय दानवों के समूह से दुःखी पृथ्वी के भार को यदुकुल में अवतार लेकर लीलापूर्वक जिसने दूर किया। वह जगन्नाथ कृष्ण हम लोगों की स्तुति से प्रसन्न होकर हमारी पाप राशि को दूर करेगा।

श्याकोपेन्द्वीवराभा कनक कपलस-
स्पीतवासाः सुहासा ।
वंकचन्द्र कांतिर्बलयित चिकुरा,
चारुकर्णावतंसा ।
अंशव्यासक्त वंशी ध्वनि सुखित जगद्-
न्नवीभिर्लसंती ।
मूर्ति गोपस्य विष्णोरवतु जगति नः
मुग्धरा हारिहारा ॥

विकसित नील कमल की कांतिवाली, शुद्ध स्वर्ण के सदृश सुशोभित पीतांबर वाली- सुन्दर हास्यवाली, चंद्रिका युक्त मयूर पंखों से बंधे हुए बाल वाली, सुन्दर कुंडलवाली, स्कंधे पर रखी हुई वंशी की ध्वनि से सुख देने वाली गोपियों से सुशोभित मालावाली, मनोहर हारवाली, गोपालक कृष्ण की मूर्ति संसार में हम लोगों की रक्षा करे ॥ ३३ ॥

वृन्दावने सलीलं वन्गुद्रुमकांडनिहततनुयष्टिः ।
स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः

वृन्दावन में लीला पूर्वक मनोहर वृक्ष के स्कंध (शाखा) के सहारे खड़े हुए, हंसते हुए, मुखपर वंशी धरे हुए कृष्ण यदि मनमें हैं तो स्वर्ग क्या चीज है ॥३४॥

मुरवैरिवपुस्तनुतां मुदं हेमनिभांशुक चन्दनलिप्तम्
गगनञ्चपला मिलितं यथा शारद नीरधरैरुपचित्रम्

पीतांबर ओढ़े और मस्तक में केशर की खौर लगाये हुए कृष्ण का शरीर ऐसा शरद के मेघों से सुशोभित चपला युक्त बादल सदृश आनंद देवे ।३३

व्रजसुंदरी समुदयेन मुदित मनसा स्म पीयते,
हिमकर गलित मिवामृतकं,
ललितंमुरारि मुखचंद्रविद्रुतम् ।

व्रज सुन्दरियां प्रसन्न चित्त होके चन्द्रमा की किरणों से टपके हुए से अमृत के सदृश, सुन्दर कृष्ण के मुखचंद्र से टपकने वाले अमृत को पी रही हैं (मीठी मीठी प्रेमसे सुन रही हैं ॥ ३६ ॥

पुसां कलिव्यालहतानां नास्त्युपहतिरल्यापि,
वीर्य विपुलामुखे चेत्स्यात् गोविंदाख्य मंत्रकला

कलिकाल रूपी सर्प काटे हुए के मुख में यदि वीर्यवती गोविंदनाम रूपी मंत्र कला है, तो जरा भी क्षति होने का भय नहीं ॥ ३७ ॥

चपला न चेत्कदाचित् नृणांभवेद्भक्तिभावनाकृष्णे
धर्मार्थकाममोक्षास्तदा करस्थान संदेहः ॥

यदि, भगवान कृष्ण में मनुष्यों की भक्ति चपला न हो अर्थात् महा दृढ़बनी रहे तो धर्म अर्थ काम और मोक्ष हाथ में ही रखे समझो । इसमें जरा भी संदेह नही है ।

पुलिन वन विहारिन् बल्लवीचित्तहारिन् ।
दनुज दलन कारिन् योगि हृत्पद्मचारिन् ॥
भवनिधि जल तारिन् पीत कौशेय धारिन् ।
शमनदर विदारिन् पाहिमां विश्वभारिन् ॥

यमुना के तट और वनमें विहार करने वाले, गोपियों के चित्त चुराने वाले, राक्षसों के मारने वाले, योगियों के हृदय में विचरने वाले, संसार सागर से तारने वाले, पीतांबर धारण करने वाले, यमराज के भयके दूर करने वाले और संसार के भरणपोषण करने वाले कृष्ण मेरी रक्षा करें ॥३६॥

गोपीजनोल्लासन कारिणं हरिं,
गोपाल बालै रनुगम्यमानम् ।
कंसादि दैत्यान्तक कृष्णचन्द्रं,
नमामि कृष्णं यदुनंदनंदम ॥

गोपियों को हर्ष देने वाले, गोपाल बालकों से घिरे हुए कंसादि दैत्यों के नाश करने वाले, उन कृष्ण को नमस्कार करता हूं ॥४०॥

ये मानवाः विगतराग परावरज्ञा,
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरंति।
ध्यानेन तेन हृत् किल्बिष चेतनास्ते,
मातुः पयोधररसं न पुनः पिबंति।

जो मनुष्य राग द्वेषको छोड़कर निरंतर सुर गुरु भगवान् कृष्ण का स्मरण करते हैं। उनके सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं और फिर उन्हें जन्म-मरण का क्लेश नहीं भोगना पड़ता ॥ ४१ ॥

भक्ति-प्रीति-प्रणय-सहितं मानदंभाद्युपेतं,
चेतोऽस्माकं गुणवदगुणं गोदुहामंगमेतत्।
विक्रीतं ते युगपदुभयं स्वीकृतं तत्त्वयाथ,
मद्दं ग्रहणासि त्यजसिच वपुर्नाथ कोऽयं विचारः

भक्ति प्रीति और प्रणय युक्त, मानदम्भादि गुण पूर्ण चित और सौंदर्यादि गुण रहित यह शरीर ये दोनों वस्तुयें हम गोपियों ने तुम्हारे हाथ एक दम बिना दामके बेचदी, और तुमने स्वीकार भी करलिया, फिर आज तुम हमारा हृदय तो ग्रहण करते हो, और शरीर को छोड़ रहे हो, यह कहां की बुद्धिमता (न्याय) है ॥ ४२ ॥

मुरहर ! रन्धन समये मा कुरुमुरलीरवंमधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतनुताप्।

हे कृष्ण, हम लोगों के भोजन बनाने के समय तुम कभी मधुर स्वर से मुरली न बजाया करो। क्योंकि तुम्हारा मुरली का स्वर सुनकर चूल्हे में लगी हुई सूखी लकड़ियां हरी (गीली) हो जाती हैं और चूल्हे की आग ठंडी पड़ जाती है। अतः हमें भोजन बनाने में कष्ट होता है ॥ ४३ ॥

गुरुजन परिचर्या धैर्यगाम्भीर्य लज्जा,
निज निज ग्रह कर्म स्वामिनि प्रेम सेवा।
इति कुल रमणीनां वर्त्म जानन्ति मर्त्या,
सुर मथन ! समस्तं हंसि वंशी रवेण ॥

गुरुजनों की सेव, धैर्य, गंभीरता और लज्जा अपने अपने घरके कार्य और स्वामी की सेवा, ये कुल रमणियों के मार्ग हैं यह बात सम्पूर्ण मनुष्य जानते हैं किंतु हे कृष्ण वंशी की सुरीली तान से तुम ये सब नियम भंग करते हो ॥ ४४ ॥

दोहः प्रायो न भवति गवां दोहनं चेन्नपाकः,
क्षीराणां स्यात् स यदि घटते दुर्लभं तदधित्वम्
दध्नः सिद्धौ क्व खलु मथनं, मन्थने क्वोपयोगः
तक्रादीनामितिगतिरभूदद्य गोधुग्गृहेषु ॥

बहुधा गायों का दूध दुहाही नहीं जाता, यदि कभी दुहा भी गया तो पकाया नहीं जाता (कच्चा ही रक्खा रहता है) यदि कभी पका भी लिया गया तो वह बिना जमाया ही पड़ा रहताहै। यदि कभी जमा भी दिया गया तो मथा नहीं जाता, यदि कभी मथा गया तो छाछ-घृत आदिका कोई उपयोग नहीं किया जाता यों ही पड़ा रहता है। हे भगवन् गोपालों के घरों में तुम्हारे वियोग से आज ऐसा दशा हो रही है ॥ ४५ ॥

वासांसि व्रजवासि वारिजदृशां हृत्वा हठादुच्चकैः
यः पाग्भूरुहमारुरोह सपुनर्वस्त्राणि विस्तारयन्
व्रीड़ा भारमपाचकार सहसा पाँचलनायाः स्वयं
को जानति मनो जनार्दन मनोवृत्ति कदा कीदृशी

जो कृष्ण पहले (छोटेपन में) जबर्दस्ती गोपियों के वस्त्रों को छीन कदंब पर चढ़कर बैठा था। उसी (चोर) कृष्ण ने वस्त्रों को बढ़ाकर द्रोपदी की लज्जा रखी कौन मनुष्य कृष्ण के मनकी

SAUDI ARABIA

वृत्ति किस समय कैसी होती है, जान सकता है। कि जो पहिले चीर चुराकर लज्जा नाश करे वही पीछे चीर बढ़ाकर लज्जा बचावे यह विलक्षण बात ॥ ४६ ॥

चक्रे चन्द्रमुखी प्रदीप कलिका धात्रा धरामंडले,
तस्या दैववशाद्दशापिचरमा प्रायः समुन्मीलति
तद्ब्रूमः शिरसा नतेनसहसा श्रीकृष्ण निक्षप्यतां
स्नेहस्तत्र तथा यथा न भवति त्रैलोक्यमंधं तमः।

इस धरामंडल में ब्रह्माने चन्द्रमुखी राधिका रूपी एक प्रदीप कलिका (दिया) बनाई है। दैववश से दशा (बत्ती) चरम (समाप्ति) हो रही है, अर्थात् तेल जल गया है, अब बत्ती जल रही है। इसलिये हे कृष्ण ! शिर झुकाकर मैं आप से विनय करती हूं, कि उस दीपकलिका रूपी राधा में जितनी जल्दी हो सके स्नेह (तेल) डालो, जिससे संसार में अन्धकार न हो ॥ ४७ ॥

यो निर्माति बिभर्ति संहरति च ब्रह्मादिमूर्त्या जगत्
वन्हि व्योमवसुंधराम्बुपवना य स्यपरामूर्तयः।
यो ब्रह्मान्तर सर्व दिक्षु विहरन्नेकोऽखिलं वीक्षते
यः सर्वाश्रय भूरचिंत्यमहिमा देवाय तस्मै नमः।

ब्रह्मा विष्णु और शिव रूपसे जो जगत को उत्पन्न, पालन, और नाश करता है। अग्नि आकाश पृथ्वी, जल, और पवन जिसकी दूसरी मूर्तियां हैं, जो अकेला बाहर भीतर तथा सब दिशाओं में व्याप्त है, जो सबका आश्रय और अचिंत्य महिमा है, उस देवता के लिय नमस्कार है ॥ ४८ ॥

वनेषु कृत्वा सुरभि प्रचारं,
प्रकाम मुग्धो मधुवासरेषु।
गायन कलं क्रीडति पद्मिनीनां,
मधू निपीत्वा मधु सूदनोऽसौ ॥

वसंत के दिनों में वनों में गो चराता हुआ अत्यधिक सुन्दर वह कृष्ण कमल मधु पीकर सुन्दर गाना गारहा है ॥ ४६ ॥

तरणि सुता तट कुंजगृहे,
वदन विधुस्मित दीधितिभिः।
तिमिर मुदस्य सुखं सुमुखी,
हरि मवलोक्य चुचुंब चिरम्।

यमुना के किनारे कुंज रूपी घरमें मुख चन्द के हास्य रूपी किरणों से अंधकार को दूर करके कृष्ण को देखके आनंद से बड़ी देरतक चूमती रही ॥ ५० ॥

रे चित्त ? चिंतय चिरं चरणौ मुरारेः,
पारं गमिष्यसि यतो भवसागरस्य।
पुत्राः कलत्रमितरे नहि ते सहायः,
सर्वं विलोकय सखे मृगतृष्णिकाभम् ॥

हे चित्, निरंतर मुरारि के चरणों का चिंतनकर, इसी से भव सागर से पार होगा। पुत्र कलत्र और बांधव समय पर तेरे सहायक नहीं होंगे, जो कुछ तू देख रहा है सब तृष्णा के समान है ॥ ५१ ॥

मधु सूदन पादाब्ज जातं मधु किमद्भुतम्।
यत्पायिनो न मुह्यंति मुह्यन्ति तदपायिनः।

भगवान् के चरण कमल से उत्पन्न मधु (मदिरा) बड़ा ही अद्भुत है। जो इसे पीते हैं वे बेहोश नहीं होते, अर्थात् उनकी बुद्धि ठिकाने रहती है, और जो नहीं पीते वे बेहोश हो जाते हैं अर्थात् संसार में फंस जाते हैं। मदिरा पीने वाला बेहोश होता है, और इसका न पीने वाला बेहोश होता है। यही इसमें विचित्रता है ॥ ५२ ॥

दासोऽहमिति मे बुद्धिचिरमासीद् व्रजेश्वरे।
दकारोऽपहृतस्तेन, गोपीवस्त्रोपहारिणा ॥

पहिले बहुत दिन तक मेरी यह दृढ़ धारणा थी कि मैं कृष्ण का (दासोहं) दास हूं। किंतु गोपियों के वस्त्र चुराने वाले कृष्ण ने मेरे नामके साथ जो "दास" पद लगा हुआ था, उसका "दा" चुरालिया, अर्थात् अब मैं सोऽहं (कृष्ण रूप) हो गया ॥ ५३ ॥

यां मत्वायमुनेति तृट्परिगतो व्यूहोगवां गाहते,
विद्युत्वानिति नीलकंठनिवहो यां दृष्टुमुत्कण्ठते ।
उत्तंसाय तमाल पत्रमिति संगृह्णंति यां गोपिकाः
कांतिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातुवः

यमुना समझ कर प्यासी गायों का समूह जिसकी तरफ दौड़ा चला जाता है, मेघ समझकर मोरों का समूह जिसे देखदेख उत्कंठित हो रहा है, तमाल पत्र समझ कर गोपियां जिसे कर्णफूल बनाने के लिये ललायित हो रहीं हैं, ऐसी कृष्ण के शरीर की कांति तुम लोगों की रक्षा करे ॥ ५४ ॥

नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे तड़िदम्बराय,
गुंजावतंसपरि पिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्र विषाण वेणु-
लक्ष्मी श्रिये मदुपदे पशुपांगजाय ।

मेघ समान शरीर वाले, पीतम्बर धारण करने वाले, घुघुची की माला और मोर मुकुट वाले, वनमाला वाले, बेत्र, विषाण, बंसी और कौरवाले, शोभावले, कोमल चरण कमल वाले कृष्ण के लिए नमस्कार है ॥ ५५ ॥

निगम तरो प्रति शाखं ,
मृगित मिलितं न तत् परंब्रह्म ।
मिलितं मिलिनमिदानीं
गोपवधूटी पटांचले नद्धम् ॥

वेद रूपी वृक्ष की प्रत्येक शाखा में ढूंढा किंतु वह परं ब्रह्म न मिला किंतु ढूंढते ढूंढते आज वह गोपियों के दुकूल में बंधा (उलझा) हुआ मिलगया मिलगया ॥ ५६ ॥

क्रमशः

चेतावनी

[संग्रहकर्ता काव्यरत्न पं० भगवत्प्रसाद शुक्ल "सनातन"]

अरे मन ! बैठा तू चुप चाप, क्यों न करता प्रभुवर का ध्यान ।
न समुचित ऐसा विस्मृति-भाव, बिना उसके न कहीं कल्याण ॥
क्षणिक सारे ऐहिक सुख भोग, मूढ़ ! क्यों करता उनकी चाह ।
अरे ! यह क्षण भंगुर है देह, न कर इसकी इतनी परवाह ॥
सोच पगले मन ! कुछ तो सोच !! न हो यौवन के मद में चूर ।
आ रहा देख, काल बलवान, मूर्ख ! करता क्यों व्यर्थ गरूर ॥
संभल ! ओ संभल झपटी चिल, अभी पर्याप्त समय है शेष ।
तोड़दे विषय-वासना-फन्द, फिर न दुख पाएगा लवलेश ॥
यही है यही दुःख की खान, लिप्त है तू जिसमें अनजान ।
देख यह है माया का जाल, जहां होता झूठा सुख-भान ॥
ज्ञान खुरिका लेकर निज हस्त, काटदे ! काट !! इसे तत्काल ।
हटाते फिर दीख पड़ेगा तुझे, महा प्रभु का वह भवन विशाल ॥

Pharmacy | UPharma | Environmental Science | 3 Positions
OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

वासना

[के० श्री यमुना प्रसाद श्रीवास्तव नरसिंह पुर]

देह आदि इंद्रियां तथा अन्न पानादि हमारे प्राण स्वरूप हैं, पुत्र, मित्र, कलत्र तथा धन धान्यादि सब हमारे हैं:—इस प्रकार आकर्षण करने वाली भावनायें जो मनुष्य के मन में उठती हैं उन्हें वासना कहते हैं:—

ये मम देश विलायत हैं गज,
ये मम मन्दिर ये मम थाती।
ये मम मात पिता पुनि बान्धव,
ये मम पूत सो ये मम नाती॥
ये मम कामिनी केलि करे नित,
ये मम सेवक हैं दिन राती।
सुन्दर! ऐसेहिं छांड़ि गयो सब,
तेल जरयो सु बुझी जब बाती॥

सच पूछो तो कोई किसी का नहीं है।

न दुशमन है कोई अपना,
न साजन ही हमारे हैं।
हमारी जात मुतलक से,
हुये ये सब पसारे हैं।

और भीः—

माया सगी न मन समा, सगो न यह संसार।
परशुराम या जीव को, सगो सो सिरजनहार॥

वासनाएँ मन में उठती हैं। मन बड़ा चंचल है। सदा भटकता ही रहता है।

चंचल मन निशदिन भटकत है।
ऐसी भटकत है भटकावत है॥
ज्यों मर्कट तरु ऊपर चढ़कर।
डार डार पर लटकत है॥
रुकत यतन से क्षण विषयन ते।
फिर तिन ही में अटकत है।
कांच के हेतु लोभ कर मूरख।
चिन्ता मणि को पटकत है॥
ब्रह्मानन्द! अमीरस छोड़के।
तुच्छ विषय रस गटकत है॥

और भीः—

दुनियाँ के जंगलों में यह मन भटक रहा।
अटका यहाँ जो आज तो कल वहां अटक रहा
मंदिर में फंस गया कभी मसजिद में जा फंसा
छूटा यहां से आज तो कल वहां अटक रहा है

मन ही वासनाओं की जड़ है। वही मनुष्यों को बन्धन में फंसाता है।

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।

भावार्थ—मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयों से प्रेम करने का नाम 'बन्धन' है।

Pharmacy | L/Pharma | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

'बद्धोहि को यो विषयानुसगी'।

माया—ममता का बन्धन बड़ा ही विकट है। वही मनुष्यों को परेशान करता है इसलिये कहा है:—

'छाड़ि देहु ममता अरु मोहू।
भजो ब्रह्म ब्रह्म सब होऊ॥

'विषय' पांच हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनको ग्रहण करने के लिये कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं। पांचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों में आसक्त होने से अन्तःकरण को क्षोभ होता है उसी क्षोभ को बन्धन कहते हैं। इंद्रियां बड़ी बलवान् हैं। वे हठात् मन को हर लेती हैं। इंद्रियों को जिस विषय की इच्छा होती है उस पर वे लालयित हो जाती हैं। इन्द्रियों के लालायित होने से मन, और मन के लालयित होने से जीव भी लालयित हो जाता है। ऐसी दशा में मनुष्यों का इस संसार से पार पाना कठिन है।

मन में विषयादिक की जो कामना होती है उसे 'काम' कहते हैं काम को शान्त कर देने से क्रोध, लोभ मोह आदि सबही शत्रुओं पर विजय मिल जाती है।

'प्रजाहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते॥'

विषयों को ग्रहण करने वाली ज्ञानेन्द्रियां—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पांच तत्वों से बनी हैं जब ये पांचों तत्व ही हमारे नहीं हैं, तब उनके विषय हमारे विषय कैसे हो सकते हैं?

न पृथिवी न जलं नाग्नि,
नैवायुर्वा न वा भवान्।
एषां साक्षिणमात्मानं,
चिद्रूपं विद्धि मुक्तये॥

भावार्थ—तुम न पृथ्वी हो, न जल हो, न अग्नि हो, न वायु हो और न आकाश ही हो। तुम तो सबों के साक्षी चेतन स्वरूप आत्मा हो।

उस पर भी विचित्रता यह—

तुम विषय वासना नहीं तजते। सुख प्राप्ति की कल्पना करके रात दिन हवाई किले बनाते हो और अपना मनोरंजन करते रहते हो। यथार्थ में तुम बहुत भूलते हो। ममता ही दुःख का मूल है। यह मेरा घर है। यह मेरा कुटुम्ब है। यह मेरा मन है। यह मेरी इंद्रियां हैं। मेरा वचन नहीं टल सकता इत्यादि ही तो ममता है इसी को वासना कहते हैं। जब तक मन में वासना रहती है तब तक संसार से पिंड नहीं छूटता।

'यदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बंधनं तदा।

जब 'मैं' और 'मेरा' का ममत्व दूर हो जाता है तब मोक्ष होती है और जब तक वह दूर नहीं होता तब तक बन्धन रहता है।

'वासना एव संसार, इति सर्वा विमुंच ताः'।

इंद्रियों और विषयों का परस्पर गहरा संबन्ध है। विषयों बिना इन्द्रिय रह नहीं सकतीं। उन्हें चाहे जितना तृप्त करो वह तृप्त नहीं होती।

इन्द्रियाणि न्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति'।

जन्म देने वाली वासना-वृत्ति ज्ञानियों तक का पीछा नहीं छोड़ती वह तो उन्हें भी बीच में अटका रखती है।

SAUDI ARABIA

एक बड़े ज्ञानी योगीश्वर थे। उन्होंने अपना अंत समय निकट आया जानकर समाधि लगाने की इच्छा की और आसन बिछाकर उसपर जा बैठे। पास ही आम का वृक्ष था उसमें लगे हुए आमके फल को देखकर उनका जी ललचाया और आम खाने की इच्छा हुई। उनकी यह वासना उन्हें आम के पास लेगई और वे आमके कीड़े हुये वहां उन्होंने खूब रस पीकर अपनी वासना पूरी की। इस प्रकार दुष्ट वासनाएँ ज्ञानियों तक को परमपद तक पहुंचने नहीं देती और बीचमें ही उनको रोक लेती हैं। अतः मोक्षाभिलाषियों को उनसे विशेष सावधान रहना चाहिये और संपूर्ण वासनाओं को इक दम त्याग देना चाहिये। और फिर उनके चक्कर में न आना चाहिये। यदि वे बल पूर्वक अपनी ओर खींचे तो उस ओर ध्यान ही न देना चाहियें। तभी जाकर मोक्ष की प्राप्ति होती है अन्यथा सब गुड़ गोबर होजाता हैं। 'अहंब्रह्मास्मि' की केवल एक अखण्डाकार वृत्ति ही सच्चा सुवासना कहलाती है उसी के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसके अतिरिक्त और सब वासनाओं की गणना कुवासानाओं में की जाती है। इसीसे महात्मा तुलसीदास जी ने कहा है।

सब तज भजन करो दिन राती।

यह कार्य मनका है। इन्द्रियां मनके आधीन हैं। इसलिये मनको विषयों से खींचकर सन्मार्ग में लगाना चाहिये।

मोक्षो विषय वैरेण्यं बंधो वैषयिको रसः।
एतावदेव विज्ञानं यथेच्छसि तथा कुरु।

विषयों को त्याग देने का नाम मोक्ष और विषयों से प्रेम करने का नाम बंधन है।

विषय और वासना एक है। जो यह जानकर भी कि विषय वासनाओं को त्यागदेने से मोक्ष मिलती है फिर भी उनके पीछे पड़ते हैं वे बड़े मूर्ख हैं।

मनकी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। एकके पूरे होते ही दूसरी आथेरती है।

तीनों लोक अहार कियो सब,
सात समुन्दर पियो पुनि पानी।
और जहाँ तहां ताकत डोलत,
काढ़त आंख डरावत पानी॥
दांत दिखावत जीभ हिलावत,
याहि तें वे यह डाकिनि जानी।
सुन्दर! खात भये कितने दिन,
यह तृष्णा अजहूं न अघानी॥

और भीः-

हज़ारो ख्वाहिशें ऐसी,
कि हर ख्वाहिश पै दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान,
फिर भी कम निकले॥

और भीः-

भरे हुऐ हैं हजारों अरमां,
फिर उस पै है हशरतों की हशरत।
कहां निकल जाऊं या इलाही,
मैं दिलकी वसअत से तंग होकर॥

मन के संकल्प और वासनाओं से संसार बनता है। चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने और मरने का नाम संसार है। मरने के समय जिस

Pharmacy | U/Pharma | | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

पास पदार्थ वासना रहती है वह उसे अवश्य प्राप्त होता है।

'वासना यत्र यस्य स्यात्स तं स्वप्नेषु पश्यति।
स्वप्नवन्मरणेऽप्येवं वासनातो वपुर्नृणाम् ॥'

पति पत्नी का सम्बन्ध विख्यात है। पत्नी पति को देवता तुल्य पूजती है और पति पत्नी को तीर्थ समान मानता है।

साला तीरथ, ससुरा तीरथ, तीरथ छोटी साली।
मातपिता की लाज न कीजे तीरथ है घरवाली ॥

पति को पत्नी में अधिक आसक्त होने से पति देवको पत्नी के उदर से जन्म ग्रहण करना पड़ता है। माता का अंत समय पुत्र पर अधिक स्नेह होने से पुत्र की पत्नी बनना पड़ता है। इस प्रकार स्त्री देखने में ऊपर से अमृत समान है परन्तु भीतर विष भरा हुआ है।

'विष रस भरा कनक घट जैसे।

स्त्रियां ही सारे अनर्थों की जड़ हैं। उनका बंधन बड़ा विकट है मोक्षाभिलाषियों को तो उनसे सदा दूर ही रहना चाहिये।

तमो द्वारे योषितां सगि संगम्।

स्त्रियों के सहवास करने वालों के साथियों के साथ रहने से नरक की हवा खाना पड़ती है फिर साक्षात् करने वालों की बात ही क्या रही।

एक जनक अरु कामिनी,
तजिये भगिये दूर।
हरि विच पारें अन्तरा,
यम देसी मुख धूर ॥
अविनाशी विचधार तिन कुल कंचन अरु नार।
जो कोई इनसे बचे सोई उतरे पार ॥

पुत्र और पुत्रियां भी महा दुखदाई और शत्रु रूप ही हैं। उनका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा और विवाह संस्कार आदि करना पड़ता है। उस समय यदि द्रव्य नहीं होता तो ऋण लेना पड़ता है। इस पर भी वे मूर्ख रहजाते हैं और कहना नहीं मानते तब बड़ा दुःख होता है और अंत में नरक की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

सगे-सम्बन्धी भी महा स्वारथी और गरजी होते हैं। स्वार्थ परता तो उनमें कूट कूट कर भरी रहती है! जो बुद्धिमान हैं वे उनके जाल में नहीं फंसते।

दुनियां में खूब देखा आखें पसार करके।
साथी नहीं हमारा मा बाप और भैया ॥
सुख के हैं सब संगाती दुनियाँ के यार सारे।
तेरा ही नाम प्यारा दुख दर्द से बचैया ॥

शरीर नरक है। घी तेल आदि पदार्थ चमड़ों के कुप्पों में रह सकते हैं, परन्तु शरीर में डाला हुआ पदार्थ पेट में पहुंचते ही विष्टा बन जाता है। भगवान् के पंचामृत प्रसाद की भी वही गति होती है। जिस अन्न से विष्ठा बनता है। उसी अन्न से हमारा शरीर भी बनता है फिर दोनों में अन्तर ही क्या रहा है! नरक में जो दुःख भोगना पड़ता है शरीर में भी उन्हीं दुःखों से सामना करना पड़ता है। फिर उनमें अंतर कैसा? शरीर का यह काला गोरा, निर्बल-बलवान, लूला-लगड़ा वृद्ध-युवा, आदि होने का अभिमान भी तो कोरी कल्पना है शरीर का यह देहाभिमान ही नरक रूप होकर मनुष्यों को बन्धन में बांधता है। जिसका देहाभिमान दूर हो जाता है वही जीवन मुक्त है।

देहाभिमान पाशेन चिरंबद्धोऽलिपुत्रक।

OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

बाधोऽहं ज्ञान खड्गेन तं निष्कृत्य सुखीभव'

भावार्थ-हे पुत्र तू अधिक काल से देहाभिमान के पाश में बंधा हुआ है। 'मैं' बोधरूप हूं इस खड्ग से इस पाश को काटकर सुखी होजा।

माता के रुधिर और पिता के वीर्य से शरीर बनता है। रुधिर और वीर्य दोनों ही अपवित्र द्रव्य हैं जो चमड़े की थैलियों में भरे रहते हैं। अन्य नाड़ियों का मल भी बहकर वहीं आ जाता है। यही सब मांस मेदा आस्थि, मज्जा शुक्र रुधिर आदि के रूप में परिणित होकर शीरर की रचना करता है।

है जग मूत और मूतहि को बन्यो।
मूत को भाजन मूत में पाग्यो॥
खेत में मूत खतान में मूत।
ओ मूतहि मूत दसों दिशि लाग्यो॥
भाखें निरञ्जन! अमृत मूत है।
मूतहि सो जग है अनुरागो॥
तात को मूत ओ मात को मूत।
तै नारि को मूत ले चारन लाग्यो॥

शरीर सब तरह से गन्दा है। स्त्री भी गन्दी है परन्तु स्पर्श के रसिकों को क्या? उन्हे तो गन्दे रास्तों में ही रमना अच्छा लगता है।

धन योवन यों आयगा, जा विधि उड़त कपूर।
नारायण! गोपाल भज क्यों चाटे जग धूर॥

भक्ति के प्रिय पाठको! मोह निद्रा में तो आप खूब सो लिये हैं अब तो विषय वासनाओं को छोड़ दीजये। और परलोक का फिकर किजिये-

यहां तो सोये शौक से,
तुम बिस्तरे कमरख्वाब पर।
सफर भारी सिर पै है,
वहां भी बिछौना चाहिये॥

और भी:-

बीज बोकर फूल उठाया,
खूब तुमने है यहां।
आकबत के वास्ते भी,
कुछ तो बोना चाहिये॥

क्या इस पर कभी आपने विचार किया है। यदि नहीं तो अब कीजिये। नुसखा यह है।

'सब तज हर भज'।
अथवा
कर ते कर्म करो विधि नाना,
मन राखो जहां कृपा निधाना'।

बस! इसी में हमारा आपका कल्याण है।

अब बोलिये! भगवान श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द विन्द्रावन विहारी जी की जय! जय!! जय!!!

Pharmacy | UPharma | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

भगवत् स्मरण से लाभ

[ले० श्री प्रभुदत्तजी शास्त्री भ० म० आश्रम]

साधन की कमी से षडैश्वर्य सम्पन्न अखिल विश्व के नायक श्री भगवान के स्मरण चिन्तन से से क्या लाभ होता है, ऐसी बहुत जिज्ञासुओं की की इच्छा होती है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक साधन ठीक २ न होने लगता है तब तक ही शंकाओं को उत्पत्ति होती है। भगवत् का वचन है:-

तावत्कर्माणि कुर्वीत यावन्निर्वेद्य नो भवेत्।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

तब तक कर्मों को करता ही रहे जब तक कि चित्त निर्मल न हो जाय, अथवा जब तक मेरी कथा श्रवणादि में श्रद्धा उत्पन्न न हो जाय। साधन रूप जितने भी कर्म हैं सब चित्त की शुद्धि के लिये हैं। जिस प्रकार मलिन दर्पण में किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता उसी प्रकार मलिन चित्त में ईश्वर का आभास नहीं पड़ता। कर्म हीन शंका निराधार होती है। कहावत है कि 'जिस ग्राम को जाना नहीं उसका मार्ग पूछने से क्या लाभ" ऐसे ही साधन न करते हुये केवल तर्क से भजन से क्या लाभ, क्या प्रयोजन' इत्यादि शंकाओं से कुछ नहीं सिद्ध होता। इसी लिये श्रुति में कहा है। "नैषा तर्केण मतिरापनेया" केवल तर्क से बुद्धि को नहीं गवाना चाहिये। जैसे कोई कहे दो लकड़ियों के घिसने से क्या लाभ, ऐसे ही "भगवत् स्मरण से क्या लाभ" यह कहना है। यदि लकड़ियों को को घिसा जाय तो अग्नि उत्पन्न हो जाती है ऐसे ही भगवत् भजन से ईश्वर ज्योति हृदय में प्रकट हो जाती। ईश्वर का अनुभव "मूकास्वादनवत्" गूंगे के गुड़ खाने के समान है वह वर्णन नहीं हो सकता केवल अनुभव गम्य है।

समाधि निर्धूतमलस्य चेतसो,
निवेशयन्नात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरास्ततः,
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

ईश्वर भजन-स्मरण द्वारा प्राप्त समाधि से धोया गया है चित्त का मल जिसका, उसका आत्मा में मन के प्रवेश होने पर जो सुख होता है वह उस समय वाणी से वर्णन नहीं किया जाता स्वयं अन्तः-करण से ग्रहण किया जाता है। ईश्वर वागादि इन्द्रियों का विषय नहीं इसी लिये उपनिषद में कहा है।

यद् वाचा न वदति येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

जो वाणी से नहीं बोलता है, या जो वाणी के द्वारा नहीं बोला जाता है किन्तु जिससे वाणी बोलती है वही ब्रह्म है, न कि जो यह उपासना करते हैं।

इसी प्रकार सब इन्द्रियां उससे बहुत अवर रह जाती हैं।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेः परतस्तु सः॥

इन्द्रियां पर हैं, इनसे भी परे मन है, मन से भी सूक्ष्म पर बुद्धि है और जो बुद्धि से परे है वह आत्मा या परमात्मा है। जो मन वाणी तथा बुद्धि से पर है उसका ज्ञान भी पर है इसलिये उसके विषय में जो कुछ भी विचार है वह सब अनुभव गम्य

for details | OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

है। अनुभव के लिये स्मरणादि साधन हैं जिनका अनुष्ठान करने से ही उनके लाभ का हलका ज्ञान होता है। स्मरण एक ऐसा साधन है जो कि बहुत सरल व अत्यन्त उपयोगी है। इसी कारण नवधा भक्ति में इसको तृतीय स्थान प्राप्त है मन की क्रिया निरन्तर होती रहती है। याद किसी वस्तु की तभी होती है जब कि उसके गुणों का विचार आता है। संसार के विभिन्न विषयों में रूप रस गन्ध स्पर्श सुख दुःख आदि गुण विभिन्न रूप से विद्यमान हैं इसीलिये उनका परस्पर में समवाय सम्बन्ध अर्थात् नित्य सम्बन्ध है। गुण गुणी का अवयव अवयवी का, जाति व्यक्ति का और क्रिया क्रियावान् का नित्य सम्बन्ध होता है यह नियम है। "नीलोऽयं घट" ऐसा कहने पर नील और घट का समवाय संबन्ध है, किन्तु घट के नील पीतादि रूपों का विपर्यय उलट फेर भी हो जाता है। जैसे कच्चा घड़ा और रंग का होता है। फिर अग्नि के संयोग से प्रथम काला होता है, फिर लाल होता है। फिर नीला होता है। गुणका और गुणी का नित्य सम्बन्ध है किन्तु विशेष गुण व गुणी का नहीं। ईश्वर के सर्व शक्ति मत्ता दयालुता आदि गुण नित्य हैं। अतः सांसारिक क्षणिक पदार्थों के चिन्तन से मनका चंचल होना स्वाभाविक है जो गुणी अनित्य है उसके गुणभी अनित्य हैं उनका चिन्तन भी क्षणिक होगा यही कारण है कि मनका विषयों के साथ सम्बन्ध होने से चंचलत्व स्वाभाविक सा होगया है यदि ईश्वर के गुणों का निरन्तर चिन्तन किया जाय तो मन का चंचलपना मिट सकता है। क्षणिक आधार को छोड़कर नित्य आधार के पकड़ने से स्थिरता स्वयं प्राप्त हो जाती है इसी हेतु ईश्वर का स्मरणता ध्यान आदि नित्य आधार पकड़ने से मन की निश्चलता सिद्ध होती है। निरन्तर जिस वस्तु का ध्यान रहेगा उसी का स्वरूप हो जाना असंभव नहीं।

सति सत्कं नरोयाति सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते॥

सत्-परमात्मा में एक निष्ठा से (स्मरण ध्यानादि द्वारा) लगा हुवा मनुष्य सद् भाव परमात्म भाव को प्राप्त होता है जैसे कीड़ा भ्रमरी का ध्यान करने से भ्रमर बन जाता है। यह है भगवत् के स्मरण का परम लाभ। जिस चित्त में विषयों की कामना व चिन्तन होता है उस में ईश्वर का आभास नहीं चमकता। एक ओर लगा हुवा मन शीघ्र सिद्धि को प्राप्त करलेता है। जैसे विषयों का चिन्तन मन को अपनी ओर खैंचलेता है ऐसे ही ईश्वर चिन्तन से मनको ईश्वर अपनी ओर खैंचलेते हैं। किसी महापुरुष ने भगवत् का प्रण क्या ही अच्छा बतलाया है:-

जो कोई चित्त से मोहे ना बिसारे,
मैं ना बिसारूं प्रण है यही मेरा॥
धर्म प्रिय हो धर्म बढ़ाऊं सकल कार्य कर अर्थ बताऊं।
मुक्ति चाहे तो पार लगाऊं पलक्षण मां ह न लागत बेरा॥
रोग हरूं चिन्ता सब टारूं अभय करूं शत्रुवन को मारूं।
अचल भक्त जन बेग उबारूं सेवा करूं आय बन चेरा॥
मेरा नाम भक्त सुखदायक, सदा विपत्ति में होत सहायक।
जो कोई रटे कृष्ण यदुनायक, ताके हृदय करूं नित डेरा॥

कहते हैं जो कोई ईश्वर की तरफ एक कदम बढ़ता है ईश्वर उसकी तरफ तीन कदम बढ़ते हैं। अतः निरन्तर हृदय में ईश्वर का स्मरण रखना चाहिये जिससे मनको विषय चिन्तन का अवसर न मिले।

यस्य स्मरण मात्रेण जन्म संसार बन्धनात्।

विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

जिसके स्मरण मात्र से जीव जन्म व संसार के बन्धन से छूट जाता है। उस सर्व समर्थ व्यापक भगवान् के लिये नमस्कार है।

भगवान के स्मरण करने में सबसे अधिक भक्त प्रल्हाद जी हुये हैं जिनकी भक्ति संसार में अप्रतिम हुई है। उनको प्रतिक्षण अपने प्यारे प्रभु का पुण्य स्मरण रहता था जिसके कारण प्रभु का उनपर भारी अनुग्रह था पिता के द्वारा असह्य दुःख दिये जाने पर भी उनकी प्रभुने प्रति क्षण रक्षा की यह सर्व विदित है। एक महात्मा कहते हैं:-

" हरि सुमरण सत्संग मगत में सार पदारथ दोई "।

गुरु नानक जी कहते हैं:-

' राम सुमिर राम सुमिर यही तेरो काज है '।

कबीर जी कहते हैं:-

' सुमरण बिन गोता खावोगे '।

एक महात्मा कहते हैं:-

"तेरी बिगरी बात बनजाई, हरिनाम सुमरले भाई'।

अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः॥

नारायणो नामनरो नराणां, प्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेक जन्मार्जित पाप संचयं हरत्यशेषं स्मरतां सदैव॥

इत्यादि, सभी महात्माओं ने स्मरण का महत्त्व बतलाया है। अतः जिज्ञासुओं का कर्त्तव्य है कि निरन्तर अपने मनको अपने परम इष्ट परमात्मा के स्मरण में लगाने का यत्न करें। सर्व साधारण के लिये भी शास्त्रों में दो और चार बारकी संध्या द्वारा भगवत् स्मरण का नियम बनाया हुवा है।

कु०-सार वस्तु संसार में सुमरन हरि का जान।
भक्त जनों के हृदय का, हरत सकल अज्ञान॥
हरत सकल अज्ञान, ज्ञानका दीपक जोवे।
करत अविद्या नाश, चित्त शुचि निर्मल होवे॥
प्रति क्षण सुमरण जो करे, उसका बेड़ा पार।
भव सागर से होत है, याते सुमरण सार॥

ॐ नमः

[रचयिता श्रीमती ब्रज कुमारी प्रभाकर (आश्रम)

फट जायगी बस अब धरा निज छोड़ करके क्षम्यता॥
मिट जायगी वह शील व्रत मयी सृष्टि की सब सभ्यता॥
तट लाँघ सागर आयेंगे स्थल त्याग कर गम्भीरता॥
हट जायेंगे व्रत के व्रती अब भूल कर निज धीरता॥
कट पड़ेंगे शृंग गिरिवर हिम गलित उन्नत पना॥
सट जायगा नभ छिन्न हो अब छोड़ कर विस्तृतपना॥
घट जायगी फिर क्या नहीं ? तेरे विरद की रम्यता॥
नट जायगी तुझसे यदि तेरी प्रतीति भव्यता॥
डट होश कर तू भक्त (ब्रजहित) भगवान् व्यापी सर्व है॥
पट हैं पतित तब भक्त जन जिनका जगत को गर्व है॥

साधन-सहाय

[ले० श्रीकृष्ण पन्त नैनीताल]

१ प्रथमतः उत्तर वा पूर्व मुख होकर आसन में बैठना चाहिये। जिस प्रकार का आसन करके बैठने से तुम्हें सुख मिले एवं देह स्थिर रहे उसी प्रकार बैठना चाहिये। कोई नियम करके आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिये। जिसके पक्ष में जब जो आसन सुख, स्थिरता, दृढ़ता, प्रभृति देवे वही आसन अवलम्बनीय है। तथाहि

'आसनेन रुजं हन्ति'
(योगचडामण्युपनिषद्)
'स्थिर सुखमासनम्' (सांख्यदर्शनम्)
'आसनेन वपुर्दार्ढ्यम्' (काशीखण्डे)

पीछे साधन करते समय यदि शरीर अपने आप ही घूम कर मुख दूसरी ओर हो जावे तो उसी ओर मुख करके ही क्रिया करते रहना चाहिये।

२ आसन पर बैठ कर पहिले बांये कान के ऊर्ध्व भाग के मूल में हाथ जोड़ कर "ओं गुरवे नमः" कहकर श्री गुरुदेव को मन ही मन प्रणाम करते हुए यह चिन्तन करना चाहिये कि 'श्रीगुरुदेव मुझे शक्ति दे रहे हैं और मेरे भीतर गुरुशक्ति जाग्रत हो रही है'। इसी प्रकार दक्षिण कर्ण मूल में हाथ जोड़कर 'ओ३म् गणेशाय नमः' कहकर विघ्ननाशक सिद्धिदाता गणेश जी को मनही मन प्रणाम करते हुये स्मरण करना चाहिये कि गणेशजी मेरे साधनकाल के आनेवाले विघ्न समूह को विदूरित करके मेरी साधना में सहायता करेंगे"। तदुपरान्त भ्रु युगल के मध्य भाग में हाथ जोड़कर अपनेइष्ट देवता को इष्टमन्त्र से प्रणाम करके यह भावना करनी चाहिये कि 'मेरे इष्टदेव स्वयंही मेरे साधन काल में मुझे चलावेंगे"।

३ साधन करते करते शरीर कृश होने पर कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इसको नाड़ी शुद्धि का शुभ लक्षण समझ कर निश्चिन्त मन से साधन चलाना चाहिये।

'कृशत्वं च शरीरस्य तदा जायते निश्चयम्'
योगतत्त्वोपनिषद्।

नाड़ी शुद्ध होने पर निश्चय ही शरीर की कृशता होती है।

नाड़ी शुद्धिमवाप्नोति पृथक् चिह्नोपलक्षितः
शरीर लघुता दीप्ति बह्निर्जठर वर्तिनः॥
जाबाल दर्शनोपनिषद्।

नाड़ी शुद्ध होने पर शरीर लघु (हल्का) होता है, जाठराग्नि की वृद्धि होती है।

४ साधन करते समय यदि किसी प्रकार का भय अनुभव होवे अथवा कोई भयङ्कर रूप देखने में आये तो उससे डरना नहीं चाहिये। इसको

Pharmacy | L/Pharma | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

साधन पथ का शुभ लक्षण समझना चाहिये। उस समय गुरु अथवा इष्टमन्त्र मन ही मन खूब जल्दी जल्दी जपना चाहिये। किम्वा गुरु अथवा इष्ट नाम कईएक बार उच्चारण करना चाहिये।

५ साधन करते समय यदि नेत्रों से जल गिरे किम्वा हृदय में कम्प उपस्थित होवे, अथवा समस्त शरीर अकस्मात् कांप उठे किम्वा कांपते जाय तो इससे भयभीत नहीं होना चाहिये इनको साधन मार्ग के उन्नति के शुभ लक्षण जानकर और भी अधिक जपादि करना चाहिये।

शिव पुराण की वायवीय संहिता में कहा हुआ है:-

लक्षणं शक्ति लाभस्य
प्रबोधानन्दसम्भवः।
सा यस्मात् परमा शक्तिः
प्रबोधानन्द रूपिणी ॥
आनन्द बोधयो र्लिङ्ग
मन्तः स्फुरण विक्रिया।
यया स्युः कंप रोमाञ्च
स्वर नेत्रादि विक्रियाः॥

अर्थात् शक्ति पात के चिह्न प्रबोध और आनन्द हैं। इसका कारण यह है कि वह परमा-शक्ति प्रबोध और आनन्द स्वरूप है। प्रबोध और आनन्द के चिन्हों का अन्तर में स्फुरण रूप विक्रिया है। इसके द्वारा कम्प रोमाञ्च एवं स्वर और नेत्रादि अंग की विक्रिया होती है।

प्रायशेदुदेशिको देव शिष्यानुग्रह काम्यया
प्रसीद देव देवेश देहमाविश्य साधकम्
विमोचयेनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे

ईश्वर की शक्ति गुरुद्वारा शिष्य में संचारित होने पर शिष्य अनुभव करने लगता है कि उसमें एक अपूर्व शक्ति का जागरण (प्रबोध) हो रहा है, एवं वह उससे अत्यन्त आनन्द कर रहा है। शक्ति पात के अनन्तर शिष्य के देह में कभी कभी विद्युत् स्फुरण, अन्तस्थ वायु का नाना प्रकार गमन, अन्तस्थ अंगों का कम्पन, गात्र में सूची (सूई) चुभने की भांति अनुभव, अकस्मात् चौंक पड़ना, इत्यादि प्रकार से अन्तःकरण प्रकाश पाता है। एवं शिष्य अपने देहके बाहिर कम्प, रोमाञ्च, अश्रुपात, नाक मुखसे नाना प्रकार के शब्द, प्रकाश, एवं चलु हस्त पद प्रभृति अंगों की नाना प्रकार की भाव भंगी प्रत्यक्ष अनुभव करता है।

६ साधन करते समय यदि स्वेद (पसीना) निकले तो उसे हाथ से शरीर में मललेना चाहिये। कपड़े से अथवा अंगोछे से नहीं पोंछना चाहिये।

७ साधन करते समय यदि जिह्वा से जल निकले तो उसे निगल लेना चहिये। बाहर नहीं फैंकना चाहिये किन्तु कफ वा कास (बलगम) निकलने पर उसे बाहर फैंकदेना चाहिये।

८ साधन करते समय यदि वृहद् अथवा लघुशङ्का (टट्टीपेशाब) का वेग उपस्थित होवे तो साधन से उठकर विष्टा मूत्र त्याग करके पुनः साधन आरम्भ करना चाहिये।

९ साधन करते करते यदि अलक्षित भाव से निद्रा आपड़े, एवं जागने पर देखे कि मन्त्र स्मरण होता है, तब यह नहीं समझे कि समय वृथा नष्ट हुआ है, साधन मार्ग में यह अतीव शुभलक्षण है, इसको योग निद्रा कहते हैं। परन्तु आलस्य करके सोने की या निद्रिता होने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

SAUDI ARABIA

for detailed job description visit online www.timesjobs.com SAUDI ARABIA

१० साधना के फलसे शरीर के अभ्यन्तरस्थ सुप्त व्याधि प्रकाशित होकर नष्ट होजाते हैं। सुतरां साधना के प्रथम अवस्था में काम को उत्तेजना, रेतःस्खलन, पेटकी व्याधि, ज्वर प्रभृति उपद्रव उपस्थित होने पर भीत तथा निराश नहीं होना चाहिये, साधना करते जाने पर साधना की शक्ति से ये सभी अपने आपही विदूरित हो जाते हैं। यदि किसी स्थान में ये शान्त न हों तो औषध सेवन करनी चाहिये।

११ सकल स्थानों में, सकल समय में, सब अवस्थाओं में यह साधन किया जा सकता है। इस साधन में शुचि अशुचि का विचार नहीं है। पुरुष का आशौच और स्त्रियों की रजस्वला अवस्था में भी इस साधन के करने में कोई बाधा नहीं है।

एतन्मन्त्रं सकृत्कृत्वा प्रजपेदनिशंमनुम्।
प्रजपेदनिशं विद्यां शौचाशौचं न चाचरेत्॥

कामधेनुतन्त्र

मन्त्र को एकबार चैतन्य युक्त करके उसको सर्वदा जप करना चाहिये। तब शुचि अथवा अशुचिका विचार नहीं किया जाता।

जाग्रत् शयान उत्तिष्ठन्
भुञ्जानो गमनेऽपि वा।
सिद्ध मन्त्रे न दोषः स्यात्
आशौच-नियमेऽपि च॥

(विश्वसारतन्त्रे)

जाग्रत् अवस्था में शयन करते हुए, उठते उठते, खाते खाते, गमन करते हुए अथवा अशुचि अवस्था में भी सिद्धमन्त्र का जप करने में दोष नहीं है।

'सर्व्वदैव जपः कार्य्योन दोषस्तत्र कश्चन

(पद्मपुराणे)

जप सर्वदा करना चाहिये, इसमें कोई दोष नहीं है।

१२ अंगुलियों के पर्व से, माला से वा वर्णमाला से (पञ्चाश वर्णरूपा कुण्डलिनी) अथवा वाचिक, उपांशु, मानस, सगर्भ, वा सध्यान:-इन पांच प्रकार के जपों में से जब जिससे रुचि हो उसी प्रकार जप करना चाहिये।

वाचिक=कोई साथ बैठा हो यदि वह मन्त्रोच्चारण सुन सके तो वह वाचिक जप कहा जाता है।

उपांशु=मन्त्रोच्चारण करते हुए यदि केवल अपने आपको ही सुनाई देवे तो वह उपांशु जप है।

मानस=जपका शब्द यदि निजको भी न सुनाई देवे अथवा भीतर ही भीतर जप होता जाता है, वह मानस समझा जाता है।

सगर्भ=जब जप और प्राणायाम किया साथ साथ चलें।

सध्यान=जप और ध्यान के एक संग चलने को सध्यान जप कहते हैं।

"वाचिकस्त्वेक एव स्याद्
उपांशुः शत मुच्यते।
साहस्रो मानसः प्रोक्त
सगर्भस्तु शताधिकः॥
प्राणायाम समायुक्तः
सगर्भो जप उच्यते।
सगर्भादपि साहस्रः सध्यानो
जप उच्यते॥"

एषुपञ्च विधेष्वेकः
कर्तव्यः शक्तितो जपः॥

(क्रमशः)

Pharmacy | L/Pharma | Environmental Science | 3 Positions

योग-साधन

[ले०-श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती]

१०५४. सत्-चित्त-आनन्द आदि विशेषणों से यह समझा जाता है कि ब्रह्म में असत्, अविद्या और दुःख नहीं है। ब्रह्म में सत्-चित्-आनन्द के वीपरीत गुण नहीं पाए जाते इसी प्रकार अनन्त, अमृत आदि गुण प्रगट करते हैं कि अन्त और मृत्यु आदि गुण ब्रह्म में नहीं पाए जाते। इसको वेदान्त में व्याकृति कहते हैं।

१०५५. शास्त्रों में तीन वाद हैं। सांख्य वादियों का परिणम वाद अर्थात् दूध का दही में परिवर्तन होजाना। शंकराचार्य का विवर्तवाद जैसे रज्जु में सर्प, गौड पदाचार्य का अजातिवाद अर्थात् विकाश रहित संसार। प्रथम वाद कनिष्ट है। विवर्तवाद मध्यम है और अजाति वाद सबसे श्रेष्ठ है।

१०५६. बिच्छु की पूंछ में जहर होता है, सांप के दांत मे जहर होता है और मच्छर के मुख के रसमें ज़हर होता है परन्तु शैतान पुरुष के समस्त शरीर में ज़हर होता है।

१०५७. परमात्मा सर्वशक्तिमान है परन्तु एक अर्थ में वह नहीं के बराबर है कारण वह अपने अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता।

१०५८. न्याय दर्शन में सात द्रव्य हैं। द्रव्य, [illegible] और अभाव। स्पर्श, संख्या, परिमाण, भिन्नता, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म, संस्कार।

१०६०. भोजन करते समय मौन साधन करना चाहिए। इस पत्र के पढते ही इसका अभ्यास करना चाहिए। इसके लाभ बहुत हैं। इसका अभ्यास करो और अनुभव करो तुम्हारी आत्मिक शक्ति बढ जावेगी और तुमको चित्त की शान्ति प्राप्त होगी।

१०६१. जब तुमको अवकाश मिले तुम प्रयाग, हृषिकेश, बनारस, कनखल, हरिद्वार, नासिक, वृन्दावन, अयोध्या और नवद्वीप आदि तीर्थ स्थानों में चलेजाओ। वहां एकाग्रचित्त होकर खूब भजन करो। साधु महात्मा की तलाश करो। और श्रद्धा, भक्ति पूर्वक प्रसाद लेकर उनके दर्शन करो। उनके उपदेश को ग्रहण करके उसपर अमल करो और कुछ दिन उनके सत्संग में रहो।

१०६२. जहां तुम रहो वहां अपने इष्ट मित्रों में प्रेम-सभा, योग-मण्डल, वेदान्त-समाज या हरि-कीर्तन-सभा आदि अवश्य बनाओ और सब मिल-कर कमसे कम आध घण्टे भजन करो। नित्य

for detailed job description | OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

प्रातः काल मिलकर बैठो। आसन, प्राणायाम और शारीरिक व्यायाम करो। अपनी जेब में सदैव कुछ पैसे रक्खो और नित्य प्रति गरीब आदमियों को बांट दो। इन बातों का शीघ्र अभ्यास करो।

१०६३. समय बड़ा अमूल्य है प्रतिक्षण परमात्मा की याद में और सेवा में खर्च करो। न्याय-शास्त्र में पांच प्रकार के कर्म बतलाये हैं ऊपर को फेंकना, नीचे को डालना, सकोड़ना, फैलाना और गमन करना।

१०६४. जाति दो प्रकार की है परम् और अपरम्। भेद जो कि नित्य प्रकृति में निवास करते हैं अनेक प्रकार के हैं। समवाय केवल एक है।

१०६५. अभाव चार प्रकार के हैं। पूर्व गामी अस्तित्व अर्थात् घड़ा आरम्भ में मिट्टी में नहीं था प्राग्ध्वंस अभाव। नाश के पश्चात अस्तित्व अर्थात फूटने के पश्चात् घड़ा नहीं रहता। अत्यन्त अभाव। शशे के सींग, बन्ध्या का पुत्र, आकाश में कमल

१०६६. यदि परमात्मा कीसी को अपने चरण कमलों में लेना चाहता है तो उसके धन, स्त्री और पुत्रों का हरण करलेता है। मेरे प्यारे प्रेम बुड़बुड़ाना छोड़दो और धीरता पूर्वक यह कहो "परमात्मा तेरी इच्छा पूर्ण हो" उसपर पूर्ण विश्वास रक्खो। इमान दारी से प्रयत्न करो और फलको परमात्मा पर छोड़दो।

१०६७. वायु का कोई रंग, रूप नहीं है परन्तु इसमें छूने की शक्ति है। परमाणुओं के रूप में यह नित्य है और उत्पत्ति के रूप में अनित्य है। उत्पत्ति [illegible]। यह भेद शरीर के शरीर वायु के लोको में है। त्वचा वह इन्द्रिय है जिसके द्वारा समस्त शरीर की समवेदना का ज्ञान होता है।

१०६८. वायु जो शरीर में रमण करता है प्राण कहलाता है। यद्यपि यह एक है परन्तु भिन्न २ सन्धियों के कारण यह प्राण, अपान समान, व्यान और उदान के नाम से पुकारा जाता है।

१०६९. आकाश में शब्द का गुण है। यह एक है, सर्व व्यापक और नित्य है। भूत, वर्तमान और भविष्यत का ज्ञान कराने वाला काल है। यह सर्व व्यापक और नित्य है। आकाश ही पूर्व पश्चिम और उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं का ज्ञान कराने वाला है। यह सर्व व्यापक और नित्य है।

१०७०. आत्मा, ज्ञान का निवास स्थान है। यह दो प्रकार का है जीवत्मा और परमात्मा। प्रधान आत्मा परमात्मा है जो सर्वज्ञ है। वह एक है और सुख व दुःख से निवृत्त है। प्रत्यगात्मा भिन्न २ शरीरों में रहता है। यह सर्व व्यापक और नित्य है।

१०७१. मन वह यंत्र या इन्द्रिय है जिसके द्वारा जीव सुख व दुःख का अनुभव करता है। मन अनन्त है कारण जीव अनन्त है प्रत्येक जीव के साथ मन लगा हुआ है। यह परमाणु के रूप में है और नित्य है।

१०७२. प्रिय श्याम! तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो। नैष्ठि ब्रह्मचारी वह है जिसने जीवन भर मन, वचन कर्म से ब्रह्मचारी रहने का व्रत धरण किया है। सूर्य भी तुमारे सामने काम्पायमान हो सकता है क्योंकि ब्रह्मचर्य की सक्ति से सब भय खाते हैं। तुम तेजस्वी पुरुष हो।

—

भजन

(संग्रहकर्ता हरिराम ब्रह्मचारी भ० भ० आश्रम)

१

प्रिय ब्रज जीवन वेगि पधारो ॥ टेक ॥
चक्रपाणि गिरधर नट नागर मोहनि मूरति वारो ॥
प्रिय ब्रज जीवन वेग पधारो ॥ १ ॥
अगणित भक्त विकल रोते हैं तिनकी व्यथा निहारो ।
झमझम वृष्टि विपति बरसति हैं गिरिधर गिरकर धारो
प्रिय ब्रज जीवन० ॥
कंस अंशअरि रूप दासता देति हमें दुख भारो ।
प्रिय भारत के हित नट नागर अपना रूप संभारो ॥
प्रिय ब्रज जीवन० ॥
फिर निज चक्र संभारो हे हरि असुरन दल संहारो ।
हम दुखियन की विनय यही प्रभु भारत भार उतारो ॥
प्रिय ब्रज जीवन० ॥
कालिन्दी की रम्य तटी पर बर वंशी कर धारो ।
जै जै भारत वर्ष हमारा मुरली माहि उचारो ॥
प्रिय ब्रज जीवन० ॥

२

अजहुं न नीकसे प्राण कठोर ॥ टेक ॥
दर्शन बिना बहुत दिन बीते सुन्दर प्रीतम मोर ॥
चार पहर चारों जुग बीते रैन गवाँई भोर ॥
अवधिगई अजहुं नहीं आये कतहुं रहे चितचोर ॥
कबहुं नैन नींद नहीं पेखे मारग चितवत तोर ॥
दादू ऐसे आतुर बिरहीनी जैसे चन्द्र चकोर ॥

३

भोला छाय रहे काशी में,
गौरां महारानी के संग ॥ टेक ॥
गोरे २ तन पर भस्म विराजे जटा जूट में गंग ॥
बीलकी पतियां प्यारी लागें और चढ़े चन्दन ॥
आक धतूरा भोग लगत है, भर २ लोटा भंग ॥
नन्दीश्वर असवारी सोहे भूत प्रेत लेसंग ॥
दास नारायण शरण आपकी लगा नया नित रंग ॥

४

उधो इतने मोह सतावत ॥ टेक ॥
कारी घटा देख बादर की,
दामनी चमक डरावत ॥
हेम सुता पति को रिपु व्यापे,
दधी सुत रथन चलावत ॥
अम्बु खंडन शब्द सुनत ही,
चित चकित उठ धावत ॥
कंचन सुरपति को जो भ्राता,
ते सब बलही न आवत ॥
शंभु सुत को जो वाहन है,
मोह कोहक असल सतावत ॥
यद्यपि भुंजग भूप ॥ अंगवनावत,
सोही भुजंग होय धावत ॥
सूरदास बि हिन अति व्याकुल,
खगपति चटकिन आवत ॥

OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA

Pharmacy | L/Pharma | | 3 Positions
Ref No | Environmental Science

REG DN(. .L 3077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)।
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	॥=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥।)
१९.	गवांक	,,	१।)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

OPPORTUNITIES IN SAUDI ARABIA